बिगड़े हुए दिमाग़

[छै कहानियाँ]

भैरवप्रसाद गुप्त
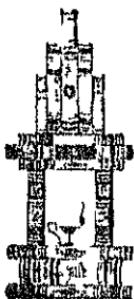
कल्याण साहित्य मन्दिर
प्रयाग

अगस्त, १९४९

भैरवप्रसाद गुप्त के लिये
कल्याण साहित्य मन्दिर, प्रयाग
ने प्रकाशित किया

मूल्य दो रुपये

मुद्रक :—
महेशप्रसाद गुप्त,
केसरवानी प्रेस, प्रयाग ।

स्वर्गीय भैया,

श्रीकृष्ण प्रसाद को,

जो अपने हृदय पर १६४२ के

खूनी दमन के जलते हुए दाग लिये चले गये !

—भै० प्र० गु०

देश म कभी सुख की नींद न सो पायेंगे।

केवल क्रान्ति की कहानियों से संग्रह में एकरसता न आने पाये, इस विचार से गुप्त जी ने 'कफन', 'मजनू का टीला' और 'कला और विज्ञान' कहानियाँ भी रख दी हैं। गुप्त जी सोद्देश्य लिखने वालों में से हैं। 'मजनूँ का टीला' जैसी रूमानी कहानी में भी आपने बड़े नाटकीय ढंग से उद्देश्य का समावेश कर दिया है।

'कफन' यथार्थवादी कहानी है। इसके शीर्षक को देखकर प्रेमचन्द की याद तो आती है, परन्तु कहानी के आधारभूत विचार, उसकी वर्णनशैली की यथार्थता और उसके अन्त को देखकर उनका यह नाम रखना छोटा मुँह बड़ी बात नहीं लगती। कफन' बहुत ही अच्छी और बहुत सफल कहानी है।

श्री गुप्त जागरूक लेखक हैं। कल्पना के स्वप्न महल बनाना और उन्हीं में वर्त्तमान की कटुताओं को भुलाये रखना उन्हें प्रिय नहीं। वे खुली आँखों से वर्तमान को देखते हैं और उसका वर्णन करते हैं। स्वप्न वे न देखते हों, यह बात नहीं, किन्तु उनके स्वप्न जीवन के लिये अफीम का काम नहीं करते, उसे गति प्रदान करते हैं। वर्त्तमान की कटुताओं का यथार्थ चित्रण कर, वे उनमें प्रसित मानव के उज्ज्वल भविष्य के स्वप्न देखते हैं। उन्हीं स्वप्नों की स्पष्ट अथवा अस्पष्ट झाँकी इन कहानियों म पाठकों को मिलेगी।

उनकी आगामी कहानियों में यथार्थता की यह धार और भी तीक्ष्ण हो और उनकी उद्देश्यता सम्भवता और संयम का आँचल थामे रहे, इसकी मैं कामना करता हूँ। यदि वे अपनी प्रतिभा के प्रति आश्वस्त और त्रुटियों के प्रति जागरूक रहेंगे, तो साहित्य क्षेत्र में सदा ही अपने मार्ग को प्रशस्त पायेंगे।

५, खुसरो बाग रोड।

इलाहाबाद

—उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

बिगड़े हुए दिमाग़

बिगड़े हुये दिमाग

चार मोटी-मोटी रोटियाँ और भुने हुए आलू के कतर पोटली मे बाँध, चूल्हे के पास रख बतकी झोपड़ी के दरवाजे के पास आ खड़ी हुई। बाहर घटाटोप अन्धकार छाया था। कुछ भी सुझाई न देता था। बस एका-दुका बड़ी बूँदों के टप-टप पड़ने की आवाज भर सुनाई देती था। तनिक और आगे बढ़, एक पैर चोखट पर रख, सिर दरवाजे के बाहर कर, चौकन्नी आँखों से उसने इधर-उधर देखने का प्रयत्न किया। उस समय उसके कान भी बूँदों के टप टप के सिवा और किसी आवाज का, अगर कोई और आवाज हो तो, सुनने के लिये पूरे सतर्क थे। उसे जब कुछ भी सुनाई या दिखाई न दिया, तो सहसा ही व्यस्त सी हो अन्दर को मुड़ी। कोने मे पड़े खाली बोरे को उठा, उसका 'घोघा' बना सिर पर रख लिया, और पोटली उठा, बगल मे दबा, दीये को फूँक मार झोंपड़ी के बाहर हो गई। बाहर खड़ी हो एक बार फिर उसने बड़ी सतर्कता से इधर-उधर भाँपा, फिर अत्यधिक शीघ्रता से कुण्डी चढ़ा, चोरों की तरह बेआवाज कदम रखती, वह गली को पार करने लगी। उस वक्त भी दोनों ओर से बोरे के किनारों से ढकी उसकी चोकन्नी आँखों की पुतलियाँ जुगनुओं-सी कभी-कभी चमक उठती थीं। गली पार कर लेने पर उसकी चाल तेज हो गई, और थोड़ी ही देर बाद वह उस गहरे अन्धकार मे तेजी से आगे बढ़ता हुआ एक काला धब्बा बन कर रह गई।

बतकी धीरेन की पुरानी नौकरानी थी, इतनी पुरानी कि उसके घर या गाँव के नवयुवक-समाज में उसके विषय में कुछ भी जानने की किसी को भी तनिक भी उत्सुकता नहीं रह गई थी, कि बतकी कौन है, वह कहाँ की रहने वाली है, कब, कैसे और क्यों वह धीरेन के घर में आ पड़ी। जैसे उसके कुटुम्ब की तरह वह भी सब की जानी-पहचानी है, उसके जीवन में कोई विशेष रहस्य नहीं, कोई जानने-लायक बात नहीं।

धीरेन ने जब होश सँभाला, तो उसे बताया गया कि लड़कपन में गर्मी शुरू होते ही उसके शरीर का चप्पा-चप्पा फोड़ों से भर जाता था। फोड़े इतने बदबूदार मवाददार और इतनी कसरत में होते थे, कि कोई भी उसके पास फटकने की हिम्मत नहीं करता था, छूने की तो बात ही दूर रही। उस वक्त यही बतकी उसे नहलाती-धुलाती, दवा लगाती, और जब वह मारे पीड़ा के चीखता-चिल्लाता, तो वह उसके फोड़ों पर घंटों फूँक मार उसे आराम पहुँचाती, पुचकारती और दुलारती। उस हालत में भी जब वह उसकी गोद में जाने को मचलता, तो दूसरों के लाख मना करने पर भी, वह उसे फूल की तरह उठा कर बाहर से घुमा लाती, उसका मन बहला लाती। धीरेन अब अपने सुन्दर शरीर को देखता, तो सहसा इन बातों की कल्पना भी उसके दिमाग में नहीं जमती। फिर भी वह बतकी के प्रति अपने को अन्दर ही-अन्दर कृतज्ञ समझता था। और बतकी का तो पूछना ही क्या? वह धीरेन का सुन्दर, स्वस्थ शरीर देख वैसे ही फूल उठती थी, जैसे कोई डाक्टर अपने रोगी को स्वस्थ देख कर। किन्तु डाक्टर और रोगी की तरह बतकी और धीरेन का सम्बन्ध सामयिक नहीं था। वह सम्बन्ध समय के साथ-साथ और भी गाढ़ा होता गया। यहाँ तक कि पास-पड़ोस के लोग धीरेन के

प्रति बतकी की माया ममता देख कह उठते—"बतकी पहले जन्म में धीरेन की माँ थी। इस जन्म में भी धीरेन की ममता ही उसे न जाने कहाँ से उसके पास खींच लायी है।" बतकी जब यह सुनती, तो सहसा उसका हृदय बोल उठता—'सच ही तो! अगर अब वह जाना भी चाहे, तो धीरेन को छोड़ते उससे कैसे बनेगा? नहीं, नहीं, धीरेन के बिना अब वह एक पल भी नहीं रह सकती!'

धीरेन भी उसका आदर अपनी माँ से कम न करता। गाँव की पढ़ाई खत्म कर जब वह शहर के हाई स्कूल में पढ़ने जाने लगा, तो विदा होते समय उसने अपनी माँ के पैर छूये। बतकी एक ओर खड़ी, भरी भरी आँखों से उसे देख रही थी। माँ से विदा हो, जब वह बतकी के पास जा उसके चरण छूने को झुका, तो बतकी की आँखों में कब की अटकी बूँदें टप टप धीरेन के सिर पर चू पड़ीं। उसने झुक कर उसे बीच ही में से उठा लिया और गद्गद् हो, उसे छाती से लगा हाथ की पोटली उसके हाथ में थमा दी। धीरेन ने हकबका कर पोटली को उँगलियों से छुआ, तो गोल-गोल रुपये-से लगे। वह सहसा बोल पड़ा—"फुआ, यह क्या?" (कुटुम्ब में धीरेन के पिता और माता को छोड़ सब लड़के, लड़कियाँ और बहुएँ बतकी को फुआ ही कह कर पुकारती थीं।)

"कुछ नहीं, बेटा!" तनिक झेंपती-सी बतकी बोली—"तेरी माँ की तरह मेरे पास खजाना तो है नहीं। यह मेरी सालों की कमाई है। तुम्हारे ही घर से मिला है। बेटा, इसे भी अपने ही पर खर्च कर देना।"

धीरेन से उस समय कुछ कहते न बन पड़ा। वह उसे वापस

न कर सका। वह एक क्षण तक उस बतकी का देखता भर रह गया। पास खड़ी माँ और दूसरे लोगो की नजरें भी उस समय बतकी पर जेसे फूलो की वर्षा कर रही थी।

हाई स्कूल तक तो कोई गुल न खिला, पर लोगों का कहना है कि कालज की हवा लगते ही धीरेन का दिमाग बिगड़ गया। अब वह पढने-लिखने मे दिल नही लगाता। आज कही पिकेटिंग मे शामिल हो रहा है, तो कल किसी सभा के सगठन मे और परसो कोई जुलूस निकालने का चक्कर। पिता को जब ये बातें मालूम हुइ, तो उन्होने लिखा, 'बेटा, यही पढने लिखने का जमाना है। कुछ पढ-लिख लोगे, तो जिन्दगी बन जायगी। काम करने क लिये तो पूरी जिन्दगी ही पडी है। अभी से अगर तुम गाधी बाबा के चक्कर मे पड गये, तो समझ लो, गये।' परन्तु धीरेन उस समय तक इतना आगे बढ गया था, विद्यार्थी-समाज मे इतना लोकप्रिय हो चुका था कि अब कदम पीछे हटाना उसके लिये मुमकिन न था। शुरू जवानी की धुन ही कुछ ऐसी होती है कि जिस ओर दिल-दिमाग की रुझान हो गई, लडका उसी ओर अन्धे की तरह बढता है। उसके विचारो मे इतनी परिपक्वता कहाँ होती है, कि हर कदम वह फूक कर रखे, और हर काम सोच-समझ कर। चुनाचे धीरेन अपनी राह पर बढता ही गया। पिता ने जब देखा कि उनकी बात का मूल्य पुत्र के लिये कुछ रह ही नही गया तो वह भी चुप हो गये। सोच लिया, लडका बिगड गया।

• • •

व्यक्तिगत सत्याग्रह का आन्दोलन छिडा, तो धीरेन का नाम

अग्रगणी सत्याग्रहियों मे था। पिता तथा घर के लोगों ने जब सुना कि सत्याग्रह करने के अपराध म धीरेन पकड लिया गया, तो सब ने सिर पीट लिया। बतकी के जो रोने का तार बँधा, तो तीन दिन तक बिना कुछ खाय-पिये वह पडी रही। सब उसे समझा कर हार गये, फिर भी उसने कुछ भी नहीं छुआ। आखिर पिता धीरेन के मुकदमे की पैरवी मे जब शहर जाने लगे, तो वह भी उनके साथ हो ली।

हवालात मे धीरेन को खडा देख, बतकी का कलेजा मुँह को आ गया। वह बरसती आँखों से धीरेन को देखती भर रह गई।

पिता से जब मालूम हुआ कि उसके पकडे जाने की खबर पाने के बाद से अब तक बतकी ने एक दाना भी मुँह मे नहीं डाला है, तो धीरेन का हृदय सहसा ही कसक उठा। उसने अपने सामने खडी करुणा की मूर्ति, बतकी को, जिसका रोआँ-रोआँ रो रहा था, जिसके जीवन की जैसे सारी खुशियाँ ही हर गई थीं, देखा। उसकी आँखें भी नम हो गईं। उसे और भी अपने पास बुला स्नेहार्द्र स्वर मे उसने समझाया-बुझाया। पर ऐसा करने से बतकी की व्यथा जैसे सहस्रमुखी हो उठी। उसकी समझ मे क्या आना था जो आता? उसे तो अपने धीरेन के सुख दुख से मतलब था।

फिर पिता जी से केले की फलियाँ मँगाई और अपने ही हाथ से धीरेन ने जब बतकी के मुँह मे डाल दिया, तो उससे न खाते न बन पडा। उस वक्त मशीन की तरह उसका मुँह चल रहा था, और आँखें पहले से भी अधिक बरस रही थीं। धीरेन उसे ऐसे देख रहा था, जैसे हृदय की सारी ममता, सारा प्यार वह आँखों-द्वारा उस पर उडेल रहा हो।

पैरवी का नतीजा न कुछ होना था, न हुआ। दो साल सख्त कैद की सजा सुना दी गई।

उस वक्त बतकी को कुछ भी बताना मुनासिब न समझ, पिता उससे झूठ-सच कुछ कह कर, उसे बहला कर घर ले आये। पर बहुत दिनों तक उसे भुलावे में न रखा जा सका। जिस दिन उसे धीरेन की सजा की खबर मालूम हुई, उसी दिन से उसकी जिन्दगी ही बदल गई। अब पहले-सा घर के काम-काज में उसे न उत्साह ही रह गया और न किसी बात में दिलचस्पी ही। दिन भर बैठी वह या तो आँसू बहाया करती या अपने धीरेन की तस्वीर ले बिसूरती रहती। घर के लोगों ने उसे किसी प्रकार छेड़ना मुनासिब न समझ चुप ही रहना ठीक समझा।

महीने महीने जब धीरेन से मिलने उसकी माँ, पिता, भाई या दूसरे लोग जेल जाते, तो वह भी उनके साथ जरूर जाती। उस दिन और दिनों से वह कुछ खुश नजर आती, और ऐसी व्यस्त रहती, जैसे कि क्या-कुछ न ले जाय वह अपने धीरेन के लिये।

जेल की अवधि पूरी करने की आवश्यकता न पड़ी। एक साल बाद राजनैतिक वातावरण के बदलते ही धीरन भी दूसरे सत्याग्रहियों के साथ छूट कर घर आ गया। उस दिन घर में दीवाली की खुशी छा गई। बतकी के हर्ष की तो सीमा ही नहीं थी। उसने कई बार धीरेन के बालों और चेहरे पर स्नेह-भरे हाथ फेरे। अपने ही हाथों उसे न जाने क्या-क्या खिलाया।

कालेज में पुनः प्रवेश न पा सका, तो पिता ने धीरेन को घर पर ही रोक लिया। उसने सिर तो बहुत मारा कि कहीं जाकर राष्ट्रीय कार्यों में सक्रिय भाग ले, पर पिता, माता और बतकी के आगे उसकी एक न चली। अब वह घर ही पर रहने लगा। घर

का कुछ काम काज भी करता और जितना मुमकिन था, कांग्रेस-मंडल को भी अपना सहयोग देता। एकाएक उसका बिगड़ा दिमाग ठीक ही कैसे हो सकता था ?

• • •

यों ही बिना किसी उतार-चढ़ाव के दिन कट रहे थे, कि अचानक कार्य समिति ने महात्मा गांधी के तत्वाधान में जन-आन्दोलन छेड़ने का प्रस्ताव पास कर दिया। देश की नस-नस में जैसे नया खून जोरों से दौड़ने लगा। लोगों की उत्सुक आँखें बम्बई पर टिकी थीं। कार्य-समिति उन प्रस्तावों को कार्यान्वित करने के लिये मसविदे तैयार करने में जुटी थी, कि सहसा बिजली की तेजी से यह खबर देश के कोने-कोने में फैल गई कि सब नेता गिरफ्तार कर लिये गये। छाती के घायल जख्मों पर जैसे किसी ने ठोकर मार दी, काले जुल्मों से घबराई जनता बौखला उठी। सारा राष्ट्र अपमानित हो तिलमिला उठा। सरकार के प्रति बदले की भावना जहर बन कर देश के जर्रे जर्रे में भीन गई। विद्रोह की घटायें आकाश पर छा गई। चारों ओर शोलों की वर्षा शुरू हो गई। दिशायें दहकते शोलों से लाल हो उठीं।

धीरेन को तो जैसे अपने हौसले पूरा करने का एक नायाब अवसर ही मिल गया। सब रोकते ही रह गये। पर जहाँ हजारों बिगड़े हुये दिमाग वाले जवानों के इन्कलाबी नारों से आसमान फट रहा था, जमीन लरज रही थी, वहाँ चन्द सही दिमाग वाले बूढ़े-बूढ़ियों की बातों की हस्ती ही क्या थी ? धीरेन के पिता ने उसकी ठुड्डी को हाथ से पकड़ खुशामद-भरे स्वर में कहा—"बेटा,

ये नारे नहीं, मौत की पुकारें है। तुम इसमें मत शामिल होओ। तुम्हारे बिना भी जो करना होगा, ये कर लेंगे।"

"और अगर हर नौजवान", धीरेन ने निहायत संजीदगी से जवाब दिया—"अपनी जगह पर यही समझ ले, तो फिर गुलाम मुल्क आजाद हो चुका।"

"नहीं, नहीं, बेटा, तुम मुझे क्यों नहीं समझते? चन्द मिनट के लिये तुम एक बाप बन कर मुझे समझने की कोशिश करो। तुम जरूर समझ जाओगे, मेरे बेटे।"

"पिता जी, मैं आपको उस हालत में बेहतर समझता, अगर आप भी मेरे साथ

"ओफ! ओ धीरेन की माँ! ओ बतकी! तुम लोग समझाओ इस पागल को! इसका दिमाग बिगड़ गया है। यह अपने साथ ही सारे खानदान को मिट्टी में मिलाने पर तुला है।" कह कर उन्होंने अपना माथा ठोक लिया। देखते-ही-देखते माँ, बतकी और भाभियों ने धीरन को चारों ओर से घेर लिया और तरह-तरह से खुशामदें कर उसे रोकने लगीं। नारे की हर आवाज सुन धीरेन उस व्यूह से अपने को छुड़ाने का जोर मारता, और व उसे इस तरह जकड़ लेतीं, जैसे अपने में समो लेना चाहती हों। धीरन का तड़प सीमा पर पहुँच गई। उसकी आँखें लाल हो उठीं, चेहरा अत्यन्त भयङ्कर हो उठा, सारा शरीर जैसे फूलसा गया। उसने एक बार दाँतों को जोरों से भींचा। मालूम हुआ कि कि उसके पिता सहसा निढाल-से हो बोल उठे—"जाने दो कम्बख्त को।" जैसे यह बात खुद ही उनकी समझ में आ गई, कि जब नौजवानों के दिमाग बिगड़ जाते हैं, तो उन्हें कोई नहीं रोक सकता।

धीरेन छलाँग मार दल में जा शामिल हुआ। सामने ही से

गगन-भेदी नारे लगाते लपटो के उन पुतलो का जत्था शाला-सा भडकता निकल गया ।

'इसी तरह एक बार सन् सत्तावन मे भी कौम का दिमाग बिगडा था', सामने शून्य मे आँखे टिकाये पिता आप ही बड-बडा उठे—'उस समय उसकी दवा गोरो और देश के गद्दारों की गोलियों ने की थी । अबकी फिर राष्ट्र का दिमाग बिगडा है । देखें इस बार ...' और वह एक पागल की तरह अट्टहास कर उठे ।

गाँव के नोजवानों के साथ धीरेन पूरे नौ दिन तक घर न लौटा । घर मे बूढे और बूढियाँ आँखो मे खौफ का सन्नाटा और दिल व दिमाग मे भयकर आशकाओ को लिये दिन रात उनकी प्रतीक्षा मे घरो की चौखट पर बैठी रहीं । आज खबर आयी कि फलॉ-फलॉ थाने जला दिये गये, पुलिस बन्दूकें फेक फेक कर ऐसे भागी, जैसे उनके हाथो मे बन्दूके नहीं, किसी ने बिच्छू पकडा दिय हों । कल समाचार आया कि फलॉ फलॉ बीज गोदाम लूट लिये गये । ऐसे ही स्टेशनों के जलाने, पटरियो के उखाडने, कलक्टरियो के फूँकने, जेल के दरवाजे तोडने, खजानो के लूटने की खबरें एक-एक करके आती गईं । आखिर एक दिन यह भी समाचार आ ही गया कि कलक्टर पकड लिया गया । उसने बाकायदे जिल का चार्ज जिला काग्रेस के सभापति को दे दिया । अब जिला आजाद है । अगरेजी हुकूमत का शव शोलो मे जला दिया गया ।

दसवें दिन धीरेन का दल विजयोल्लास मे देश-प्रेम भरे गाने गाता, आजादी के नशे में झूमता हुआ गाँव मे वापस आ गया । बूढे-बूढियों को उनकी आजादी की घोषणा से जितनी खुशी नहीं हुई, उतनी अपने लालो के सही-सलामत वापस आ जाने पर

हुई, जैसे आजादी की बात उनके लिये कोई कीमत ही न रखती हो! खुद बूढ़े, अक्ल बूढ़ी, दुनिया देखी नहीं! आजादी की कीमत क्या समझे? नौजवानों ने कहकहा लगाया!

लेकिन अभी दो दिन भी आजादी की नींद न सो पाये थे, कि एक रात सहसा गोलियों की धाँय-धाँय की कड़कती आवाजों से रात का सन्नाटा चीत्कार कर उठा। अँधेरे आकाश में सनसनाती गोलियाँ हजारों धूमकेतुओं की तरह टूट टूट कर चक्कर लगाने लगी। जिधर कान लगाओ, धाँय, जिधर आँख उठाओ, लपटों की लकीर! 'हाय-हाय! अब क्या होने को है?' बूढ़े बूढ़ियाँ छाती पीट-पीट कर चीखने-चिल्लाने लगीं। नौजवानों की समझ में कुछ आ ही नहीं रहा था। ओह, अचानक यह क्या हो गया?

इतने में पास के गाँव से भागते हुये एक युवक ने आकर कहा कि गोरे पहुँच गये! भागो! भागो! सारे गाँव में भागो-भागो का शोर बरपा हो गया, जैसे एक जोर का भूकम्प आ गया हो। कल के आजाद नौजवानों को काठ मार गया। उनके दिल की आग ऐसे ठण्डी हो गई, जैसे उसमें कभी गर्मी थी ही नहीं। भगदड़ ऐसी मच गई कि किसी को अपनी सुध-बुध भी नहीं रही। बच्चों की बिलबिलाहट, औरतों की चीख, बूढ़े-बूढ़ियों का रोना-पीटना, कुत्तों का भौंकना और सब के ऊपर भागते हुए पैरों की आवाजें!

"पिता जी!" धीरेन ने सिर झुका कर कहा—"मैं जा रहा हूँ! मेरा आप लोगों के साथ रहना ठीक नहीं! मेरा नाम विद्रोहियों के सरगनों में है। मेरी वजह आप लोगों पर भी आफत

"ओह!" बीच ही में पिता बोल उठे—"आज तो तुम बड़ी

सुलझी हुई बातें कह रहे हो, बेटा ! मैंने तो समझा था कि तुम्हारा दिमाग बिगड़ गया है, उसका इलाज ''

"पिता जी, यों समय बर्बाद न कीजिये ! मेरा दिमाग ठीक है। गोरों की गोलियों का मुकाबला करने के लिये हमारे पास कुछ नहीं है !"

"क्यों बेटे, और कुछ नहीं, तो उनका मुकाबला करने के लिये तुम्हारे पास सीना तो है ! बिगड़े दिमाग वाले गोलियों का मुकाबला सीनों से ही सदा करते आये हैं। मै तो समझता था कि तुम्हारा ही क्या सारे राष्ट्र का दिमाग बिगड़ गया है ! तुम लोगों को बीमारी का पहला दौरा भी मुझे सत्तावन से कुछ अधिक जोरदार मालूम पड़ा। सोचता था, शायद अबकी इस बीमारी को दवा हमेशा-हमेशा के लिये हो जाय! मगर मै गलती पर था। बेटा, सच पूछो, तो यह हिस्ट्रिया का एक मामूली दौरा था दुनिया के आधुनिक इतिहास मे दिमाग बिगड़ने की बीमारी दो हा राष्ट्रों को मुकम्मल तौर पर हुई। पहला फ्रांस था और दूसरा रूस। उनसे पूछो, वह बतायेंगे कि इस बीमारी की दवा सिर्फ गोलिया हैं ! यह बीमारी सिर्फ गोलियों से जाती है ! यह अमृत की गोलियाँ जिसने खाली, वह अच्छा हो गया ! इनमें जीवन का जौहर है ! इनसे मुर्दा राष्ट्र को जीवन मिलता है ! इनमें वह गुण है कि जिसने खाली, हमेशा, हमेशा के लिये जिन्दा हो गया। काश, हिन्दुस्तान का भी दिमाग सचमुच बिगड़ता ! काश वह गोलियों की कीमत आँक पाता !" कह कर उन्होंने एक ठण्डी साँस ली। फिर अपनी आँखें शून्य में टिका दीं। फिर एकाएक काँप से उठ, जैसे उनकी आँखों के सामने आकाश में खून के छींटे त र रहे थे, जमीन पर खून की धारों मे लथपथ लाशें तड़प रही थीं, कितने ही गोलियों के निशाने, फाँसी के तख्ते

"उफ !" कह कर उन्होंने अपना मुँह हाथों से ढँक लिया।

"पिता जी, इस वक्त आप ऐसी बातें न कीजिये। मुझे आज्ञा दीजिये, और अपने बचाव का इन्तजाम कीजिये।" अपने में बेहद उलझा हुआ धीरेन बोला।

"जाओ !" कह कर पिता ने मुँह फेर लिया।

धीरेन चौखट लाँघ ही रहा था कि बतकी सामने खड़ी हो, उसे विह्वल आँखों से देखती उतावली सी पूछ बैठी—"कहाँ चले ?"

धीरेन ने अपना मुँह उसके कान के पास ले जा कुछ फुस-फुसाया, फिर उसकी पीठ थपथपा कुछ सान्त्वना दे वह भाग खड़ा हुआ।

देखते-ही-देखते गाँव उजड़ गया। दहशत से लरजते, खौफ के सन्नाटे में लिपटे गाँव की गलियाँ गोरों के बूटों से रौंदी जाने लगीं। लगातार अपने दोनों ओर बिना कुछ देखे-सुने वे गोलियों की बौछार करते दौड़ लगा रहे थे। न उनकी गोलियाँ दम लेने का नाम लेतीं, न उनके पैर रुकने का। उनके पीछे पीछे चन्द जयचन्द और मीर जाफर के वंशज कुत्तों की तरह पूँछ हिलाते भाग रहे थे और बीच-बीच में बताते जा रहे थे—"यह फलाने का घर है। यह सरगना था।" गोरे रुक जाते। गुस्से और नफरत से उनका लाल चेहरा वीभत्सता की सीमा तक लाल हो उठता। उस घर की दीवारें पहले चाँदमारी का निशाना बनतीं, फिर पेट्रोल छिड़क कर गोलियों से आग लगा दी जाती। घर हू हू कर जल उठता।

थोड़ी ही देर में गाँव का आसमान धुएँ और लपटों से भर गया। कल का आजाद गाँव आज प्रलय का तमाशा बन रहा था। कल जिसका कोना कोना इन्कलाबी नारों से गूँज रहा था,

आज वहाँ गोलियों की धाँय-धाँय से लरज-लरज कर चीख रहा था—'ए इन्कलाबी नौजवानो ! कहाँ है तुम्हारे आसमान फाड़ने वाले वे नारे ? कहाँ हैं तुम्हारी जलती हुई आँखों की वे लपटें ? कहाँ है तुम्हारे दिलों की वे तूफानी धड़कनें ? कहाँ है तुम्हारे खून की उबाल से फटते हुए वे आग ? कहाँ है तुम्हारी चोटों की कसकन जिसने विद्रोह के लिए तुम्हें उभारा था ?"

हू-हू कर जलते हुए घरों के धुएँ में लिपटी हुई लपटों ने जोरों अट्टहास किया—'कौन कहता है कि वे इन्कलाबी थे ? कौन कहता है कि वे इन्कलाब की कीमत जानते थे ?' और फिर एक जोर का अट्टहास हुआ—'इन्कलाब बड़ा कीमती है ! इन्कलाबी इसे हर कीमत पर खरीदता है ! बूढ़े, जवान, बच्चे सब को जब तक इन्कलाब से इश्क नहीं हो जाता, सब जब तक सच्चे मानी में इन्कलाबी नहीं हो जाते, तब तक एक ये गाँव इसी तरह जलते रहते हैं, यह गोलियाँ इसी तरह धाँय-धाँय करती रहती हैं।

दमन-चक्र का पहला दौर यों ही आग, खून, आँसू के दरिया से गुजर कर समाप्त हुआ। अब सरकार को उन सरगनों के सिरों की जरूरत थी। गाँव-गाँव में हथियारबन्द पुलिस पूरे अधिकारों के साथ बैठा दी गई। जयचन्दों और मीरजाफरों ने ले दुहाथों उन्हें मदद देने के लिए हाथ बढ़ाया।

धीरन कहाँ है, इसका पता केवल बतकी को था। वह मरालहतन धीरन के कुटुम्ब के साथ न रह अलग एक झोपड़ी में रहने लगी थी। उसका काम रात को लुक छिप कर धीरन को खाना पहुँचाना, उसे कुटुम्ब का समाचार देना और उसका समाचार लाना था। यह बला का खतरनाक काम था। फिर भी बतकी उसे करती थी।

◉ ◉ ◉

उस रात भी बतकी सदा की तरह सतर्क खेतो से गुजरती हुई धीरेन के यहाँ जा रही थी। सहसा गन्ने के खेत मे पत्तों की खडखडाहट हुई। वह ठिठक कर एक बार चोकशी नजरों से इधर-उधर देखने लगी। इतने मे खेत की गीली मिट्टी मे बूटों के भद-भद पडने की आवाज आई, और फिर चार पाँच अँधेरे परदे पर आगे बढती हुई छाया मूर्तियाँ उभर पडी। बतकी के प्राण नाखून मे समा गये। अब क्या करे ? वह लपक कर बगल के गन्ने के खेत मे गठरी सी बन साँस रोक कर बैठ गई। दिल जोरो से धडक रहा था। आँखो मे खौफ भरा रहा था।

सहसा एक प्रकाश का गोला उसके शरीर पर पडा। वह बेहद घबरा कर उठी कि गन्ने के तनो में उलझ कर गिर पडी। थोडी ही देर बाद उसने अत्यधिक सहमी हुई आँखों से देखा, सामने हाथों में बन्दूक और हण्टर लिये, साक्षात यमराज की तरह भयंकर रूप धारण किये पुलिस के आदमी खड़े हैं। अब ?

एक बार फिर उसके मुँह पर प्रकाश का गोला पड़ा। आगे बढ कर एक मीरजाफर ने कहा—"यह बतकी है। धीरेन की पुरानी नोकरानी। इसे जरूर मालूम होगा धीरेन का पता।"

"अच्छा, घसीट कर इसे बाहर ले आओ !" दारोगा ने दाँत पीसते हुये गुस्से मे हुक्म दिया।

वह घसीट कर पगडण्डी पर लाई गई। सिर से पैर तक खौफ की पुतली बनी बतकी के शरीर मे कहीं प्राण था, तो उसकी गढ़ों मे धँसी हुई छोटी-छोटी आँखो में। वह एक अजीब तरह से उन्हें देख रही थी। शरीर के और अङ्ग जैसे काठ हो गये थे।

बन्दूक के कुन्दे से उसके कन्धे पर एक ठोकर दे एक ने पूछा—"बता, कहाँ है धीरेन ?"

ठोकर खा उसकी बाँह उठी कि बगल की पोटली जमीन पर आ रही। उसने लपक कर उसे उठाना चाहा कि पोटली पर एक ने बूट रख कर कहा—"क्या रखा है इसमें ?" फिर उठा कर देखा, तो रोटियाँ और भूने हुय आलू के कतरे।

"अच्छा !" खिलखिला कर कह पड़ा वह—"तो धीरेन के लिये खाना ले जा रही थी !" कह कर उसने रोटियाँ हवा में उछालीं, और गेंद की तरह उनके नीचे आते ही बूट से यों मारा कि वे टुकड़े-टुकड़े हो इधर-उधर बिखर गये।

"पापी !" चीख-सी पड़ी वतकी कि सड-सड हण्टर बरस पड़े उसकी पीठ पर। आह-आह कर बिखर गयी वह। खून के फव्वारे छर्र-छर्र बरस पडे।

"बता धीरेन का पता ! नहीं तो !" फिर सड-सड की आवाज हवा में कौंधी, कुन्दों की ठोकरें बूढी हड्डियों पर खटखट बज उठी। बूटों की ठोकरों से हड्डियों की जोड़ें चट-चट कर टूट गयीं।

'आह !' एक लम्बी-सी आह चीख के साथ जोर से उठी पर जैसे बीच ही में घुट सी गई। कहीं यह शरीर की पीड़ा उसे धीरेन का पता बताने को विवश न कर दे। एक बार वह तिलमिलाई। खून-भरी आँखों से उसने उन यमदूतों को देखा। दाँत कटकटाये। फिर जबड़ों को भींच लिया। नहीं, नहीं, वह अपने-धीरेन का पता नहीं बता सकेगी ! इस अधम शरीर की पीड़ा के कारण वह अपने प्यारे धीरेन के प्राणों को नहीं नहीं

"बताती है या नहीं ?" हण्टर का वही सड़-सड। मास के छोटे छोटे जिन्दा लोथडे हवा में हण्टर उठने के साथ-साथ उससे

अलग हो तड़प उठे ! और खून के छींटे फुहार-से बरस पड़े !

"आह ! आह !" कराहती हुई अत्यधिक पीड़ा में लिपटी हुई चन्द्र आहें ! उसका खून से सराबोर मुँह खुला—"पा

"पानी की बच्चा !" बूट की ठोकर खा उसका मुँह दूसरी ओर मुड़ गया। गालों का मांस बूट की ठोकर से चिकत गया। उभरी हुई हड्डियाँ नंगी हुईं, फिर खून की धारों से ढँक गयीं।

'बोल ! बता ! नहीं तो ! यह ले, यह ले !" फिर वही सब कुछ।

'अब ? अब ?' उसकी आत्मा अन्दर-ही अन्दर चीख उठी। 'अब नहीं सहा जाता। यह जीभ तड़प रही है। अब अब ? नहीं, नहीं ! वह इस जीभ को वीरेन के दुश्मन को "
उसने जगह-जगह छिली और बिथुरी हुई मुट्ठियों को बाँधा। जीभ को दाँतों से दबा जबड़ों को भींच लिया और पत्थर का बुत बन पड़ गई।

हण्टर बरसे ! ठोकरें लगीं ! कुन्दे गिरे पर अब न वह आह, न तड़प !

"हैं, मर तो नहीं गई ?" दारोगा ने टार्च जलाया। बतकी का वीभत्स शरीर खून में लथपथ था। तड़फड़ाते तड़फड़ाते जैसे अब थक कर वह शान्त पड़ गया। साँसें धुक-धुक चल रही थीं। टूटा फूटा खून उगलता सिर एक ओर को लटक गया था।

"इसे जरा पानी पिलाओ ! इसे मरना नहीं चाहिये। नहीं तो हाथ का आया शिकार "

एक ने बगल में लटके पानी के बर्तन का काग खोल, झुककर बतकी के मुँह पर धार गिरानी चाही।

दारोगा ने प्रकाश किया कि सिपाही बोल उठा—"सरकार, इसका जीभ तो कट कर बाहर निकल आई है।"

"आह! तब तो जोते जी भी यह अब हमारे लिये बेकार हो गई। इसने शायद जान-बूझ कर अपनी जबान दाँत से काट ली है कि कहीं पीड़ा के असह्य हो उठने पर धीरेन का पता मुँह से न निकल जाय। दीवान जी, यह बूढ़ी तो बला की हिम्मतवर और चालाक निकली।"

'चालाक क्या, सरकार!" भला दारोगा से भी कोई चालाक हो सकता है, यह सोच दीवान ने कहा—"पागल है! नहीं तो क्या यों जान दे देती!"

"हाँ, तुम ठीक कहते हो, यह पागल ही थी। और इसका दिमाग भी उस बूढ़े की तरह, जो कल अपने बेटे के पकड़ लिये जाने पर पागल की तरह उसे छुड़ाने को मुझसे उलझ पड़ा था और जो मेरी गोली का शिकार बन गया था, बिगड़ गया होगा! यह बीमारी ही कुछ ऐसी है, दीवान जी, कि जो एक बार इसमें फँसा मौत के घाट उतरा। इसका कोई दूसरा इलाज नहीं! लेकिन अब की यह दवा सरकार ने इतनी सस्ती कर दी है कि मुल्क में अब एक भी बिगड़े दिमाग वाला ढूँढे पर भी नहीं मिलेगा! सब मौत के घाट उतर जायँगे—सब अच्छे हो जायँगे, दीवान जी!" कह कर शैतानियत को भी शर्माता अट्टहास कर उसने टार्च का प्रकाश बतकी पर फेंका। बतकी का आखिरी साँसें लेता टूटा-फूटा शरीर एक बार जोर से तड़पा। फिर हाथ-पाँव काँपे। धीरे-धीरे कँपकँपाहट धीमी होती गई। हाथ और पंजे सिकुड़े, और दूसरे क्षण शरीर अकड़ कर लम्बा हो गया।

दारोगा ने बूट की ठोकर से एक इन्सान की लाश को

आखिरी सलामी दी। और कहा "ले जाओ इसे घसीट कर और भार होने के पहले किसी गढे में दबा दो।"

बतकी की टाँगें पकड़ पुलिसमैन उसे कुत्ते की तरह घसीटते हुये लिये जा रहा था। उस वक्त पूर्वी क्षितिज के दामन का एक कोना आने वाले सूर्य के खून से लाल हो उठा था।

कफन

माघ की यह साँझ जैसे आते ही चली गई। रजनी का शवनम से भागा आँचल पृथ्वी पर उतर आया। पश्चिमी धुंध मे नया चाँद ऐसा लग रहा था, जैसे चील का एक पर मकड़े के जाले के आवरण से ढंकी हुई बबूल की एक टहनी मे अटक गया हो। उसकी हल्की-हल्की, भागी हुई चाँदनी धुन्ध के पर्दे को चीर कर नीचे उतरने मे असमर्थ होने के कारण जैसे ऊपर ही ओस-कणों पर ठिठक गई थी। ऊपर चारो ओर ठंडी हवा मे जमा हुआ धुँआ ऐसा लगता था, जैसे ठंड स ठिठुरता वातावरण काली चादर ओढ चुपचाप, बिना किसी हिल हरकत के मुँह ढँके पड़ा हो। शहर की सड़क और गलियाँ धीरे धीरे निस्तब्ध होती जा रही थीं, मानो शीत और अन्धकार एक साथ मिल कर उनकी जिन्दगी चूस रहे हो।

ठेलिया की बाँसो की बल्लियो के अगले सिरो को जोड़ने वाली रस्सी से कमर लगाये रमुआ काली सड़क पर खाली ठेलिया को खड़खड़ाता बढ़ा जा रहा था। उसका अधनंगा शरीर इतनी ठंडक मे भी पसीने मे सल था। अभी-अभी एक बाबू का सामान पहुँचा कर वह डेरे को वापस जा रहा था। सामान बहुत ज्यादा था। उसके लिये अकेले खीचना मुश्किल था, फिर भी, लाख कहने पर भी, बाबू ने जब नहीं माना, तो उसे पहुँचाना ही पड़ा। सारी राह कलेजे का जोर लगा, हुमक हुमक कर खीचने के कारण उसकी गरदन और कनपटियो की रगे मोटी हो-हो

उभर कर लाल हो उठी थीं, आँखें उबल आई थीं, शरीर पसीने से तर हो गया था। और इस सब के बदले मिले थे उसे केवल दस आने पैसे!

तर्जनी उँगली से माथे का पसीना पोंछ, हाथ झटक कर उसने जब फिर बल्ली पर रखा, तो जैसे अपनी कड़ी मिहनत की उसे फिर याद आ गई। एक निष्फल क्रोध से तनिक झुँझलाता-सा वह होंठों में ही बुदबुदा उठा—"ओफ, ये बाबू भी कितने कठोर होते हैं। एक छन का भी उन्हें ख्याल नहीं होता कि उनकी मजदूरी करने वाला भी उनकी ही तरह का एक इन्सान है, जिसके हड्डियों के ढाँचे की ताकत की भी एक हद है, जिसके बाहर का काम लेना उस पर अत्याचार करना है! सरकार ने इक्के, टाँगे, बैलगाड़ी वगैर की सवारियों और बोझों के लिये कानून बनाया है, ताकि घोड़ों और बैलों के साथ अत्याचार न हो सके। पर मज-दूरों के साथ जो बाबू लोगों का अत्याचार है, उससे जैसे सरकार का कोई मतलब ही नहीं है। जानवरों पर किया गया अत्याचार जुर्म है, पर आदमी-द्वारा आदमी पर किया गया अत्याचार जैसे कोई बात ही नहीं! गधे से भी बदतर सलूक करते हैं ये..."

सहसा पों-पों की आवाज पास ही सुन, उसने अकचका कर सिर उठाया, तो प्रकाश की तीव्रता से उसकी आँखें चौंधिया गईं। वह एक ओर मुड़े-मुड़े, कि एक कार सर्र से उसकी बगल से बदबूदार धुआँ छोड़ती निकल गई। उसका कलेजा धक से कर गया। उसने सिर घुमा कर पीछे की ओर देखा। धुये के पर्दे से झाँकती हुई कार के पीछे लगी हुई लाल बत्ती उसे ऐसी लगी, जैसे वह मौत की एक आँख हो, जो उसे गुस्से में घूर रही हो। "हे भगवान!" सहसा उसके मुँह से निकल गया—"कहीं उसके नीचे आ गया होता, तो?" और उसकी आँखों के सामने कुचला

कर मरे हुये उस कुत्ते की तस्वीर नाच उठी, जिसका पेट फट गया था, अंतड़ियाँ बाहर निकल कर बिखर गई थीं, और जिसे मेहतर ने घसीट कर मोरी के हवाले कर दिया था। तो क्या उसकी भी वही हालत होती ? यह प्रश्न उसके मस्तिष्क में उठना था, कि उसका मन असीम ग्लानि से भर गया। उसका कौन था वहाँ, जो उसकी खोज-खबर लेता ? शहरी बाबू जब जिन्दा रहते उसभो से जानवरों से बदतर सलूक करते हैं, तो मर जाने पर और जिन्दा रह कर दर-दर ठोकरें खाने वाला और बात-बात पर डाँट-डपट और भद्दी-भद्दी गालियों से तिरस्कृत किये जाने वाला इन्सान भी अपने शव की दुर्गति की बात सोच काँप उठा। "ओफ यहाँ की मौत तो जिन्दगी से भी ज्यादा जलील होगी !" उसने मुँह में ही कहा। और यह बात ख्याल में आते ही उसे अपने दूर के छोटे गाँव की याद आ गई। वहाँ की जिन्दगी और मौत के नक्शे उसकी आँखों में खिंच गये। जिन्दगी वहाँ की चाहे जैसी भी हो, पर मौत के बाद वहाँ जलीलतरीन इन्सान के शव को भी लोग इज्जत से मरघट तक पहुँचाना अपना फर्ज समझते हैं। ओह, वह क्यों गाँव छोड़ कर शहर में आ गया ? लेकिन गाँव में

"ओ ठेले वाले !" एक फिटन के कोचवान ने हवा में चाबुक लहराते हुये कड़क कर कहा—"बायें से नहीं चलता ? बीच सड़क पर मरने के लिये चला आ रहा है ! बायें चल, बायें !" और हवा में लहराता हुआ उसका चाबुक बिल्कुल रमुआ के कान के पास से सनसनाहट की एक लकीर-सा खींचता निकल गया।

ख्याल की रव में डूबे हुये रमुआ को होश हुआ। उसने शीघ्रता से ठेलिया को बायीं ओर मोड़ा। फिर मुड़ कर गुजरती

हुई फिटन की ओर सहमी हुई आँखों से देखा, तो अन्दर बैठे हुए बाबू को सारस की तरह गरदन बढा कर अपनी ओर ऐसी नजरों से घूरते देखा, जैसे बाबू उन्हीं नजरों से उसे निगल जाना चाहता हो। वह ऐसे सिर नीचे कर आगे बढा, जैसे वह डर गया हो। पर सचमुच वह डरा नहीं था। शहर में आकर वह सीख गया है, कि न डरते हुये भी बाबुओं के अकारण गुस्से के प्रति झूठा सम्मान दिखाने के लिये डरने का नाट्य करना आवश्यक है। वह डर गया है, ऐसा देख बाबुओं के झूठे रोब को जैसे सहारा मिल जाता है। फिर बाबू उससे ऐसा व्यवहार करने लगते हैं, जैसे वह पूँछ हिलाता हुआ एक कुत्ता हो, और मालिक की दया का पात्र हो। फिटन कुछ दूर गुजर गई, तो उसे हँसी आ गई। ये बाबू रोब दिखाने में कितने तेज होते हैं। लेकिन अगर वह उन्हें एक थप्पड़ जमा दे, तो हल्दी-गुड़ की जरूरत पड़ जाय। पीला चेहरा, पिचके गाल, निस्तेज आँखें, हड्डियों की माला होते भी न जाने किस बूते पर ये रोब गाँठते हैं ? उँह! कभी-कभी किसी बाबू की बदजबानी पर उसके जी में भी आता है, कि वह उसका गला दबोच दे, पर उसकी गई-गुजरी शारीरिक हालत देख उसी तरह वह एक हल्की टीस महसूस कर चुप हो जाता है, जैसे एक पहलवान पैर में किसी चीज के काट खाने पर जरा झुक कर देखता है, कि अरे, यह तो एक चींटी है। फिर उसने यह भी देखा है, कि ये बाबू जरा सी खुशामद और 'बाबू बाबू' कहने से ही अपने झूठे सम्मान को प्रतिष्ठित होते देख फूल कर कुप्पा हो जाते हैं, और बेवकूफ बन दो-चार आने इनाम भी दे देते हैं। इनाम ! और गाँववासी रसुआ के आत्म-सम्मान को जैसे इनाम की बात से ठेस लग गई। ओफ, इस इनाम के कारण ही कैसी-कैसी

जलील बातें उसे सहनी पड़ जाती है! चन्द ताँबे के टुकड़ों के लिये किस तरह उसे अपने को दबा कर काम करना पड़ता है। ये ताँबे के टुकड़े! हाँ, ये ताँबे के टुकड़े इन्सान से जो भी करायें, थोड़ा है। एक ओर ये एक के झूठे दबदबे को बनाये रखने में सहायक होते हैं, तो दूसरी ओर एक की हस्ती को दबा कर उसे एक कुत्ते से भी बदतर जिन्दगी बसर करने को मजबूर कर देते हैं। लेकिन गाँव में, रमुआ की विचार-धारा जैसे कई बल खाकर फिर अपनी राह पर आ लगी, वह ऐसी जिन्दगी का आदी नहीं था। जोतता-बोता, परिश्रम करता और खाता था। किसी के सामने यों अपनी हस्ती को शून्य की सीमा तक कुचल डालने की जरूरत नहीं पड़ती थी। फिर उसे वे सब बातें याद हो आईं, जिनके कारण उसे अपना गाँव छोड़ शहर में आना पड़ा। जमींदार ने अपने खेत निकाल लिये। लड़ाई के कारण गल्ले की कीमत अठगुनी-दसगुनी हो गई। खेतों का लगान भी उसने इसी तरह बढ़ाना चाहा, पर उतने लगान पर जोतने से मिलता ही क्या? कितना रोया गिड़गिड़ाया था वह! पर जमींदार क्यों सुनने लगा कुछ? लगान का बढ़ाना तो एक बहाना था। वह जानता था कि इतना लगान कोई दे नहीं सकता। हुआ भी वही। उसने खुद खेतों पर अपना हल चलवा दिया। कल का किसान आज मजदूर बनने को विवश हो गया। पड़ोस के धनुका के साथ वह गाँव में अपनी स्त्री धनिया और बच्चे को छोड़, शहर में आ गया। यहाँ धेनुका ने अपने सेठ से बहुत-कुछ कह सुन कर उसे यह ठेलिया दिलवा दी। वह दिन भर बाबू लोगों का सामान इधर-उधर ले जाता है। ठेलिया का किराया बारह आने रोज उसे देना पड़ता है। लाख मशक्कत करने पर भी ठेलिया का किराया चुकाने के बाद डेढ़-दो रुपये से अधिक उसके पल्ले नहीं पड़ता।

उसमें से बहुत किफायत करने पर भी दस-बारह आने रोज वह खा जाता है। बाकी जमा करके हर महीने धनिया को भेज देता है। यह कोई ज्यादा रकम नहीं होती। पता नहीं कि गरीब धनिया इस महंगी के जमाने में कैसे अपना खर्च पूरा कर पाती है।

और धनिया, उसके सुख-दुख की साथिन! उसकी याद आते ही रमुआ की आंखें भर आईं। कलेजे में एक हूक-सी उठी आई। उसकी चाल धीमी हो गई। उसे याद हो आई वह बिछुड़न की घड़ी। किस तरह धनिया उससे लिपट कर बिलख-बिलख कर रोई थी। किस तरह उसने बार-बार अपनापन और प्रेम से भर ताकीद की थी, कि "अपनी देह का ख्याल रखना! खाने-पीने की किसी प्रकार कमी न करना!" और रमुआ की निगाह अपने ही आप अपने बाजुओं से होकर, छाती से गुजरती हुई रानों पर जाकर टिक गई, जिनकी मास-पेशियाँ घुल गई थीं, और चमड़ा ऐसे ढीला होकर लटक गया था, जैसे उसका मास और हड्डियों से कोई सम्बन्ध ही न रह गया हो। ओह, शरीर की यह हालत जब धनिया देखेगी, तो उसका क्या हाल होगा? पर वह करे क्या? रूखा-सूखा खाकर, इतनी मशक्कत करनी पड़ती है। हुमक-हुमक कर दिन भर ठेलिया खींचने से मास जैसे घुल जाता है, और खून जैसे सूख जाता है। और शाम को जो रूखा-सूखा मिलता है, उससे पेट भी नहीं भरता। फिर गई ताकत कैसे लौटे? जब धनिया उससे पूछेगी, 'सोने की देह कैसे मिट्टी में मिल गई,' तो वह उसका क्या जवाब देगा? कैसे उसे समझायेगा? जब-जब उसकी चिट्ठी आती है, तो वह हमेशा ताकीद करती है कि "अपनी देह का ख्याल रखना।" कैसे वह अपनी देह का ख्याल रखे? इतनी कतर-

ब्योंत कर चलने पर तो यह हाल है कि उसके लिये महीने मे मुश्किल से पन्द्रह-बीस रुपये भेज पाता है। आज करीब नौ महीने हुये उसे आये। धनिया के शरीर पर वह एक साडी और एक ही झूला छोड कर आया था। वह बार-बार चिट्ठी मे एक साडी भेजने की बात लिखवाती है। उसकी साडी तार-तार हो गई होगी। झूला कब का फट गया होगा। पर वह कर क्या? यहाँ खाने की तरह कपडे का भी कार्ड मिला था, पर उसे सेठ ने ले लिया। सेठ की दया पर वह जीता है। कैसे इनकार करता वह? कितनी बार वह सेठ से गिडगिडा कर एक साडी के लिय कह चुका है, पर वह कहता है, "अच्छा जी, देखेंगे।" उसके कपडे की दुकान है। वह चाहे, तो एक क्या कई साडियाँ दे सकता है। पर वह नहीं देता। उसके कार्ड का भी कपडा वह चोरबाजार मे बेचता है। लोगों से मन चाहा दाम ऐंठता है, उसे दे, तो उतना पैसा कहाँ से मिलेगा? कई बार कुछ रुपया जमा हो जाने पर एक साडी खरीदने की गरज से वह बाजार मे भी जा चुका है। पर वहाँ मामूली मोआली और टाढ़े की जूलहटी साडियों की कीमत जब बारह-चौदह रुपये सुनता है, तो उसकी आखें ललाट पर चढ़ जाती है। मन मार कर लौट आता है। वह क्या करे? कैसे साडी भेजे धनिया को? साड़ी खरीद कर भेजे, तो उसके खर्चे के लिये कैसे रुपये भेज सकेगा? पर ऐसे कब तक चलेगा? कब तक धनिया सी-टॉक कर गुजारा करेगी? उसे लगता है, कि यह एक ऐसी समस्या है, जिसका उसके पास कोई हल नहीं है। 'तो क्या धनिया ' और उसका माथा झन्ना उठता है। लगता है कि वह पागल हो उठेगा। नहीं-नही, वह धनिया की लाज

उसकी गली की मोड़ आ गई। इस गली मे ईंटे बिछी हैं। उन पर पड ठेलिया और जोर से खडखडा उठी। उसकी खड़-

खड़ाहट उस समय रमुआ को ऐसी लगी, जैसे उसके थके, परेशान दिमाग पर किसी ने कई बार हथौड़े की चोट कर दी हो। उसके शरीर की अवस्था इस समय ऐसी थी, जैसे उसकी सारी सजीवनी शक्ति नष्ट हो गई हो। और उसके पैर ऐसे पड़ रहे थे, जैसे वे अपनी शक्ति से नहीं उठ रहे हों बल्कि ठेलिया ही उनको आगे को लुढ़काती चला रही हो।

उस दिन से रमुआ ने और अधिक मेहनत करना शुरू कर दिया। पहले भी वह कम मेहनत नहीं करता था, पर थक जाने पर कुछ आराम करना जरूरी समझता था। किन्तु अब थके रहने पर भी अगर कोई उसे सामान ढोने का बुलाता, तो वह ना-नुकुर न करता। खुराक में भी जहाँ तक मुमकिन था, कमी कर दी। यह सब सिर्फ इसलिये कर रहा था, कि धनिया के लिये एक साड़ी वह खरीद सके।

महीना खतम हुआ, तो उसने देखा कि इतनी तकलीफ और परेशानी के बाद भी वह अपनी पहले की आय से सिर्फ चार रुपये अधिक जोड़ सका है। यह देख उसे आश्चर्य के साथ साथ निराशा भी हुई। इस तरह वह पूरे तीन चार महीने मेहनत करे, तब कहीं एक साड़ी का दाम जमा कर पायेगा। पर इस महीने के जी तोड़ परिश्रम का उसे जो अनुभव हुआ था, उससे यह बात तय थी, कि वह वैसी मेहनत अधिक दिनों तक लगातार करेगा, तो एक दिन खून उगल कर मर जायगा। उसने तो सोचा था कि एक महीने की तो बात ही है। जितना मुमकिन होगा, वह मशक्कत करके कमा लेगा, और साड़ी खरीद कर धनिया को भेज देगा। पर इसका जो नतीजा हुआ, उसे देख कर उसकी हालत वही हुई, जो रेगिस्तान के उस प्यासे मुसाफिर की होती है जो पानी की तरह किसी चमकती हुई चीज को देख कर थके हुये पैरों को घसीटता

हुआ, और आगे चलने की शक्ति न रहते भी, सिर्फ इस आशा से प्राणों का जोर लगा चढता है कि बस वहाँ तक पहुँचने में चाहे जो दुर्गति हो जाय, पर वहाँ पहुँच जाने पर जब उसे पानी मिल जायगा, तो सारी मेहनत-मशक्कत सुफल हो जायगी, किन्तु जब वह वहाँ किसी तरह पहुँच जाता है, तो देखता है, कि अरे, वह चीज तो अभी उतनी ही दूर है! निदान रमुआ की चिन्ता बहुत बढ गई। वह अब क्या करे? उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। कई महीनों से वह धनिया को बहलाता आ रहा है, कि वह अब साडी भेजेगा, तब साडी भेजेगा। पर अब उसे लग रहा है, कि वह धनिया को कभी भी साडी न भेज सकेगा। उसे अपनी दुरावस्था और बेबसी पर बडा दुख हुआ, साथ ही अपनी जिन्दगी उसे वैसे ही बेकार लगने लगी, जैसे घोर निराशा में पड कर किसी आत्महत्या करने वाले को लगती है। फिर भी जब धनिया को रुपए भेजने लगा, तो अपनी आत्मा तक को धोखा दे उसने फिर लिखवाया कि अगले महीने वह जरूर साडी भेजेगा। थोडे दिनों तक और वह किसी तरह गुजार कर ले।

आदमी की ताकत और हिम्मत तभी तक उसका साथ देती है, जब तक उसके हृदय में आशा की ज्योति जलती रहती है। पर जब यह ज्योति मद्धिम पड जाती है या बुझ जाती है, तो हिम्मत और ताकत भी उसका साथ छोड देती है। वह आदमी जीते जी मुर्दा हो जाता है, उससे कुछ भी होना सम्भव नहीं होता। और वह अपने पर जोर लगाकर कुछ करता भी है, तो उस का कोई उद्देश्य नहीं होता। वह वैसे ही होता है, जैसे कोई जिन्दगी को कुछ और घसीटने के लिये करता है। निराशा और बेबशता की आखिरी सीमा पर खड़ अपने को सीमा से भी

अधिक हेय समझने वाले रमुआ की हालत भी वही हुई। सदा की तरह वह अब भी काम किये जाता है, पर अब कोई उत्साह नहीं, कोई धुन नहीं। चेहरे पर मुर्दनी, धँसी हुई आँखों में सदा बादल-घिरे आसमान की वह अवस्था, जो अब बरसे तब बरसे की हालत में होती है, हृदय और मस्तिष्क शून्य, शरीर इतना शक्तिहीन कि उठना बैठना भी जैसे अच्छा नहीं लगता। जो काम आप ही मिल जाता है, उसे किसी तरह अपने को घसीट कर पूरा करता है। जो भी मिल जाता है, उसे ले शाम को ही अपनी कोठरी में आ गिर पड़ता है। उस वक्त धनिया की याद उसे इतनी सताती है, कि उसके खयाल से भी वह अपने को छुड़ा लेना चाहता है। पर जैसे धनिया बार बार उसके सामने आ खड़ी होती है और अपने चिथड़े कपड़े को हाथ से उठा उठा कहती है, 'देखो, देखो, मेरे कपड़े की कितनी बुरी हालत हो गई है! तुम से कितनी बार कह चुकी, पर तुमने नहीं भेजा। अब इस कपड़े को पहन मुझ से तो बाहर न जाया जायगा। पर बिना बाहर गये काम कैसे चलेगा ?' और रमुआ की बरसती आँखों के सामने जैसे कितनी ही अँगुलियाँ उठने लगती है, जो धनिया के कपड़े की ओर इशारा कर-कर कहता है, 'यह रमुआ की स्त्री धनिया है! इसके कपड़े को न देखो! जैसे नग्नता भी लजा रही है!' और रमुआ दोनों हथलियों से आँखें दबा जोर-जोर से रो पड़ता है। कभी कभी तो वैसे ही रोते रोते बिना खाये-पिये ही सो भी जाता है। इस तरह सो कर सुबह जब उसकी नींद खुलती है, तो लगता है कि अपने शरीर पर से एक पहाड़ का बोझ हटाता वह उठ रहा है।

उस सुबह को भी वह एक वैसी ही रात काट कर अपनी ठेलिया के पास खड़ा जम्भाई ले रहा था, कि सेठ के दरबान ने

आकर कहा—"ठेलिया लेकर चलो ! सेठ जी बुला रहे हैं।"

रमुआ का कलेजा धक से कर गया। तो क्या डूबते का सहारा तिनका भी उससे छिन जायगा? उसने अपनी गढ़ों में डूबी हुई आँखों को दरबान पर ऐसे उठाया, जैसे गाय सामने छुरी खड़े कसाई पर अपनी आँखें उठाती है। दरबान ने उसे अपनी ओर वैसे देखते देखा तो कहा—"इस तरह क्या देख रहे हो? सेठ जी की भैंस मर गई है। उसे गंगा जी में बहाने ले जाना है। चलो, जल्दी करो।" अच्छा, तो यह बात है। रमुआ की जान में जान आई। पर वैसे निषिद्ध काम की बात सोच उसे कुछ क्षोभ हो आया। गाँव में मरे हुये जानवरों को चमार उठा कर ले जाते हैं। वह चमार नहीं है। वह यह काम नहीं करेगा। पर दूसरे ही क्षण उसके दिमाग में यह बात भी आई कि वह सेठ का ताबेदार है। उसकी बात वह टाल देगा, तो वह अपनी ठेलिया उससे ले लेगा। फिर क्या रहेगा उसकी जिन्दगी का सहारा? मरता क्या न करता? वह ठेलिया को ले दरबान के पीछे चल पड़ा। रास्ते में वह सोच रहा था, 'जाने अभी और क्या-क्या लिखा है भाग्य में? कितना और जलील होना है उसे?'

कोठी के पास पहुँच कर रमुआ ने देखा कि कोठी की बगल में टीन की छाजन के नीचे मरी हुई भैंस पड़ी थी, और उसे घेर कर सेठ, उसके लड़के, मुनीम और नौकर-चाकर खड़े थे। जैसे उनका कोई अजीज मर गया हो। ठेलिया खड़ी कर, वह खिन्न मन लिये खड़ा हो गया।

उसे आया देख, मुनीम ने सेठ की ओर मुड़ कर कहा—"सेठ जी, ठेलिया आ गई। अब इसे 'जल-प्रवाह' के लिये उठवा कर ठेलिया पर रखवा देना चाहिये।"

"हाँ, मुनीम जी, तो इसके कफन वगैरा का इन्तजाम करा दें। मेरे यहाँ इसने जीवन-भर सुख किया। अब मरने के बाद इसे नंगा ही क्या 'जल-प्रवाह' के लिये भेजा जाय? मेरे ख्याल में बिछाने के लिये एक नई दरी और ओढ़ाने के लिये आठ गज मलमल काफी होगा। जल्द दुकान से मँगा भेजें।"

"अभी सब-कुछ ठीक हो जायगा। आप चलिये कोठी में।"

रमुआ ने बातें सुनीं, तो मारे आश्चर्य के उसकी आँखें सीमा से अधिक फैल गईं। उसे याद आ गया वह दिन जब मजदूरों की बस्ती में, जहाँ वह रहता था, एक मजदूर मर गया था। पता नहीं, कहाँ का रहने वाला था वह। उसके साथियों ने किसी तरह आपस में चन्दा कर, कुछ पैसा इकट्ठा कर चाहा था कि उसके कफन का इन्तजाम कर दिया जाय। पर सारा बाजार छान डालने पर भी, एक इन्सान की नंगी लाश की दुहाई देने पर भी किसी भले आदमी ने कफन के लिये कपड़े का एक टुकड़ा वाजिब दाम पर न दिया। एक का आठ माँग रहे थे सब। कितना कहा गया, कि जो पैसा लेकर वे कफन खरीदने आये हैं, वह गरीब मजदूरों ने आपस में चन्दा करके इकट्ठा किया है। वह इतना अधिक पैसा कहाँ से लायें? पर किसी ने एक इन्सान की लाश ढँकने के लिये अपने लाभ में से कुछ छोड़ देना गवारा न किया। आखिर उस गरीब की लाश एक पुराने, फटे चुचे कपड़े से ढक गंगा में लुढ़का दी गई। पर आज इस सेठ की भैंस के कफन के लिये नई दरी और मलमल का इन्तजाम हो रहा है। गरीब मजदूर और सेठ की भैंस—इन्सान और जानवर! मगर नहीं, गरीब इन्सान का रुतबा उस जानवर के बराबर नहीं है, जिसका सम्बन्ध एक दौलत वाले से है। यह दौलत है, जो एक इन्सान को जानवर से भी बदतर गया-गुजरा बना देती है, और एक

जानवर को इन्सान से भी ऊँचा रुतबा दिलाती है। यह दौलत है, जिसके शिकञ्जों में कस कर इन्सानित का गला घुट जाता है, और जिसके साये में पशुत्व भी मौज की जिन्दगी बिताता है।

देखते-ही-देखते उसकी ठेलिया पर नई दरी बिछा दी गई। उसे देख कर रमुआ की धँसी आँखों में न जाने कितने दिनों का कोई पामाल हसरत उभर आई। सहज ही उसके मन में उठा—काश, वह उस पर सो सकता! पर दूसरे ही क्षण इस अपवित्र ख्याल के भय से जैसे वह काँप उठा। उसने आँख दूसरी ओर मोड ली।

कई नौकरों ने मिल कर भैंस की लाश उठा बिछी दरी पर रख दी। फिर उसे मलमल से अच्छी तरह ढँक दिया गया। इतने में एक खैरख्वाह नौकर सेठजी की बगिया से कुछ फूल तोड लाया। उसका एक हार बना भैंस के गले में डाल दिया गया, और कुछ इधर उधर उसके शरीर पर बिखेर दिया गया।

यह सब-कुछ हो जाने पर सेठ के बडे लडके ने रमुआ की ओर मुड कर कहा—"देखो, इसे तेज धारा में ले जा कर छोडना! और जब तक यह धारा में बह न जाय, तब तक न हटना, नहीं तो कोई इसके कफन पर हाथ साफ कर देगा। जमाना इतना खराब आ गया है, कि आदमी का कोई ठिकाना नहीं! जब धूरे और गोबर में से आदमी अनाज के दाने चुन कर खा सकता है, तो यहाँ तो नये मलमल का सवाल है, जो किसी दाम पर भी बाजार में नहीं मिलता।"

उसकी बात सुन कर नमकहलाल मुनीम ने रद्दा जमाया—"हाँ, बे रमुआ, बाबू की बात का ख्याल रखना। चल, उठा तो ठेलिया होशियारी से!"

रमुआ को लगा, जैसे वह बात उसे ही लक्ष्य कर करके कही गई हो। कभी-कभी ऐसा होता है कि जो बात आदमी के मनमे कभी स्वप्न में भी नहीं आती, वही किसी के कह देने पर ऐसे मन मे उठ जाती है, जैसे सचमुच वह बात पहले ही से उसके मन मे थी। रमुआ के ख्याल मे भी यह बात नहीं थी, कि वह कफन पर हाथ लगायगा, पर मुनीम की बात सुन सचमुच उसके मन मे यह बात कौंध गई कि क्या वह भी ऐसा कर सकता है ?

वह इन्हीं विचारों में खोया हुआ ठेलिया उठा आगे बढा। अभी थोड़ी ही दूर सडक पर चल पाया था कि किसी ने पूछा— "क्यों, भाई, यह किसकी भैंस थी ?"

रमुआ ने आगे बढ़ते हुये कहा—"सेठ छदम्मीलाल की।"

उस आदमी ने कहा—"तभी तो ! भाई, बडी भाग्यवान थी यह भैंस ! नहीं तो आज कल किसे नसीब होता है मलमल का कफन।" कह कर वह जैसे अपने भाग्य को कोसता और भैंस के भाग्य को सराहता चला गया।

रमुआ के मन मे उसकी बात सुन कर उठा कि क्या सचमुच मलमल का कफन इतना अच्छा है। उसने अभी तक उसकी ओर निगाह नहीं उठाई थी, यही सोच कर कि कहीं उसे देखते देख सेठ का लडका और मुनीम यह न सोचे, कि वह ललचाई आँखो से कफन को ओर देख रहा है, इसकी नीयत खराब मालूम देती है। पर अब वह अपने को न रोक सका। चलते ही हुए उसने एक बार अगल-बगल देखा, फिर पीछे मुड कर भैंस पर पडे कफन को उडती हुई नजर से ऐसे देखा, जैसे वह कोई चोरी कर रहा हो, और उसके मन मे डर हो कि कहीं कोई पकड़ न ले।

काली भैस पर पड़ा सफेद मलमल, जैसे काली दूब के एक पप्पे पर उज्वल चॉदनी फैली हुई हो ! 'सचमुच यह तो बडा उम्दा कपड़ा मालूम देता है !' उसने मन मे ही कहा, 'काफी कीमती मालूम होता है !' और वह आगे बढता गया।

कई बार यह बात उसके मन मे उठी, तो सहज ही उसे उन मऊ वाली और टाइ की झिलॅगी साडियो की याद आ गई, जिन्हें वह बाजार मे देख चुका था, और जिनकी कीमत बारह-चौदह से कम न थी। उसने उन साडियो का मुकाबिला मलमल के उस कपड़े से निगाहो मे ही जब किया, तो उसे वह मलमल बेशकीमत जान पडा। उसने फिर मन मे ही कहा—'इस मलमल की साडी तो बहुत ही अच्छी होगी !' और उसे धनिया के लिये साडी की याद आ गई। फिर जैसे इस कल्पना से ही वह कॉप उठा। ओह, कैसी बात सोच रहा है वह ! जीते जी ही धनिया को कफन की साडी पहिनायेगा ? नही नही, वह ऐसा सोचेगा भी नहीं। ऐसा सोचना भी अपशकुन है। और इस ख्याल से छुटकारा पाने के लिये वह और जोर से ठेलिया खींचने लगा। आते-जाते लोगों से उसकी ऑख मिल जाती, तो उसे ऐसा लगता, जैसे वे अपनी निगाहो से ही उसकी ऑखो को छेद कर उसके मन की बात ताड रहे है।

अब आबादी पीछे छूट गई थी। सूनी सडक पर कहीं कोई नजर नहीं आ रहा था। अब जा कर उसने शान्ति की सॉस ली। जैसे अब उसे उन आदमियों की अपनी ओर घूरती ऑखो का डर न रहा गया हो। ठेलिया कमर से लगाये ही वह सुस्ताने लगा। तेज चलने मे जो ख्याल पीछे छूटे गये थे, जैसे वे फिर उसके खडे होते ही उसके मस्तिष्क मे पहुँच गये। उसने बहुत चाहा, कि वे ख्याल न आयें, पर ख्यालों का यह स्वभाव होता है, कि जितना ही आप उनसे छुटकारा पाने का

प्रयत्न करेंगे, वे उतनी ही तीव्रता से आपके मस्तिष्क में छाते जायेंगे। रमुआ ने अन्य कितनी ही बातों में अपने को बहलाने की कोशिश की, पर फिर फिर उन्हीं ख्यालों से उसका सामना हो जाता, रह रह कर वही बात पानी में तेल की तरह उसकी विचार-धारा पर तैर जाती। लाचार वह फिर चल पड़ा। धीरे धीरे रफ्तार तेज कर दी। पर अब ख्यालों की रफ्तार जैसे उसकी रफ्तार से भी तेज हो गई थी। अब उनसे किसी प्रकार का छुटकारा पाना सम्भव नहीं था। तेज रफ्तार से लगातार चलते-चलते उसके शरीर से पसीने की धारें छूट रही थीं, छाती फूल रही थी, चेहरा सुर्ख हो गया था, आँखें उबल रही थीं, और गर्दन और कनपटियों की रगें फूल फूल कर उभर आई थीं पर उसे उन सब का कैसे कुछ ख्याल ही नहीं था। वह भागा जा रहा था, कि जल्द-से जल्द वह नदी पहुँच जाय, और सेठ की लाश धारा में छोड़ दे, तभी उसे उस अपवित्र विचार से, उस धर्म संकट से मुक्ति मिलेगी। वह अब जैसे स्वयं से ही डर रहा था, कि कहीं सचमुच उसके अन्दर उठा हुआ विचार उसे च्युत न कर दे।

अब सड़क नदी के किनारे किनारे चल रही थी। उसने सोचा, क्यों न कगार पर से ही लाश नदी की धारा में लुढ़का दे। पर दूसरे ही क्षण उसके अन्दर से कोई बोल उठा, "अब जल्दी क्या है? नदी आ गई। थोड़ी दूर और चलो! वहाँ कगार से उतर कर बीच धारा में छोड़ना!" वह आगे बढ़ा। पर बीच धारा में छोड़ने की बात क्यों उसके मन में उठ रही है? क्यों नहीं वह उसे यहीं छोड़ कर आने को कफन के लोभ में, उस अपवित्र ख्याल से मुक्त कर लेता? शायद इसलिये कि सेठ के लड़के ने ऐसा ही करने को कहा था। पर सेठ का लड़का यहाँ खड़ा खड़ा देख तो नहीं रहा है। फिर? तो

क्या उसे अब उसी वस्तु से, जिससे जल्दी-से जल्दी छुटकारा पाने के लिये वह भागता हुआ धाया है, अब मोह हो गया है ? नहीं नहीं, वह तो वह तो

अब वह श्मशान से होकर गुजर रहा था। अपनी झोपड़ी से झाँक कर डोमिन ने देखा, तो वह उसकी ओर दौड़ पड़ी। पास जा कर बोली—"भैया, यहीं छोड़ दो न।"

रमुआ का दिल धक-से कर गया। तो क्या यह बात डोमिन को मालूम है, कि वह लाश को दूर इसलिये लिये जा रहा है, कि नहीं नहीं ! तो ?

"भैया, वहाँ धारा तेज है ! छोड़ दो न यहीं !" डोमिन ने फिर विनती की।

'हाँ हाँ, छोड़ दे न ! यह मौका अच्छा है। डोमिन के सामने हो, उसे गवाह बना कर छोड़ दे, और साबित कर दे कि तेरे दिल में ऐसी कोई बात नहीं है।' रमुआ के दिल ने ललकारा। पर वह योंही डोमिन से पूछ बैठा—"क्यों, यहीं क्यों छोड़ दूँ ?"

"तुम्हें तो कहीं न-कहीं छोड़ना ही है। यहाँ छोड़ दोगे तो तुम्हें भी दूर ले जाने की मिहनत से छुटकारा मिल जायगा, और मुझे "—कह कर वह कफन की ओर ललचाई दृष्टि से देखने लगी।

"तुझे क्या ?" रमुआ ने पूछा।

"मुझे यह कफन मिल जायगा," उसने कफन की ओर अँगुली से इसारा कर के कहा।

"कफन ?" रमुआ के मुँह से योंही निकल गया।

"हाँ-हाँ ! कहीं इधर उधर छोड़ दोगे, तो बेकार में सड़-गल जायगा ! मुझे मिल जायगा, तो मैं उसे पहिनूँगी। देखते

हो न मेरे कपड़े ?" कह कर उसने अपने लहँगे की गुदड़ी हाथ से उठा कर उसे दिखाई।

"तुम पहनोगी कफन ?" रमुआ ने ऐसे कहा, जैसे उसे उसकी बात पर विश्वास ही न हो रहा हो।

"हाँ हाँ! हम तो हमेशा कफन ही पहनते हैं। मालूम होता है, तुम शहर के रहने वाले नही हो! क्या तुम्हारे यहां "

"हाँ, हमारे यहाँ तो कोई छूता तक नहीं पहनने की बात तो दूर रही। तो कफन पहनने से तुम्हें कुछ होता नहीं?"

रमुआ की किसी शङ्का ने जैसे अपना समाधान चाहा, पर वह ऐसे स्वर में बोला, जैसे योंही जानना चाहता हो।

"गरीबों को कुछ नहीं होता भैया! आज-कल तो जमाने में ऐसी आग लगी है, कि लोग नगे ही लाशें लुढ़का जाते हैं। नहीं तो पहले इतने कफन मिलते थे, कि हम बाजार में बेंच आते थे।"

"बाजार में बेच आते थे?" रमुआ ने ऐसे पूछा, जैसे उसके आश्चर्य का ठिकाना न हो—"कौन खरीदता था उन्हें?"

"हम से कबाड़ी खरीदते थे, और उनसे गरीब और मजदूर!" उसने कहा।

"गरीब और मजदूर?" रमुआ ने जैसे अकचका कर कहा।

"हाँ-हाँ! बहुत सस्ता बिकता था न! शहर के गरीब और मजदूर ज्यादातर वही कपड़े पहनते थे।"

रमुआ उसकी बात सुन, जैसे किसी सोच में पड़ गया।

बार बार जैसे उनके अन्दर से कोई पुकार उठा, 'तुम भी तो गरीब हो ! तुम भी तो मजदूर हो !'

उसे चुप देख डोमिन फिर बोली—"तो, भैया, छोड दो न यहीं ! आज न जाने कितने दिन बाद ऐसा कफन दिखाई पडा है ! किसी बहुत बडे आदमी की भैंस मालूम देती है ! तभी तो ऐसा कफन मिला है इसे । छोड दो, भैया ! मुझ गरीब के काम आ जाय ! तुम्हें दुआयें दूँगी !" कहते-कहते वह गिड़गडा पडी ।

रमुआ के मन का संघर्ष और तीव्र हो उठा । उसने एक नजर डोमिन पर उठाई, तो सहसा उसे लगा, जैसे उसकी धनिया चिथडों मे लिपटी डोमिन की बगल में आ खड़ी हुई है, और कह रही है, 'नहीं नहीं, इसे न देना ! मैं भी नगी हो रही हूँ ! मुझे मुझे ' और उसने ठेलिया आगे बढाई ।

"क्यों, भैया ? तो नही छोडागे यहाँ ? "—डोमिन निराश हो बोली ।

रमुआ सकपका गया । क्या जवाब दे वह उसे ? मन का चोर जैसे उसे पानी-पानी कर रहा था । फिर भी जोर लगा कर मन की बात दबा उसने कहा—"सेठ का हुक्म है, कि इसका कफन कोई छूने न पाये !" और ठेलिया को इतने जोर से आगे बढाया, जैसे वह इस ख्याल से डर गया हो, कि कहीं डोमिन कह उठे 'हूँ-हूँ ! यह क्यो नहीं कहते कि तुम्हारी नीयत खुद खराब है ।'

काफी दूर बढ कर, यह सोच कर कि कही डोमिन कफन के लोभ से उसका पीछा तो नहीं कर रही है, उसने मुड कर चोर की तरह पीछे की ओर देखा । डोमिन एक लड़के से उसी की ओर हाथ उठा कर कुछ कहती-सी लगी । फिर उसने

देखा, कि वह लडका उसी की ओर आ रहा है। वह घबरा उठा। तो क्या वह लडका उसका पीछा करेगा ?

अब वह धीरे धीरे रह रह कर पीछे मुड मुड कर लडके की गति-विधि को ताडता चलने लगा। थोडी दूर जाने के बाद उसने देखा, तो लडका दिखाई नहीं दिया। फिर जो उसकी दृष्टि झाऊ के झुरमुटों पर पडी, तो शक हुआ, कि कहीं वह छिप कर तो उसका पीछा नहीं कर रहा है। पर कई बार आगे बढते बढते देखने पर भी उसे जब लडके का कोई चिन्ह दिखाई न दिया, तो वह उस ओर से निश्चिन्त हो गया। फिर भी चोकन्नी नजरो से इधर-उधर देखता ही बढ रहा था।

काफी दूर एक निर्जन स्थान पर उसने नदी के पास ठेलिया रखी। फिर चारों ओर शका की दृष्टि से एक बार देख कर उसने कमर से ठेलिया छुडा जमीन पर रख दी।

अब उसके दिल मे कोई दुविधा नहीं थी। फिर भी जब उसने कफन की ओर हाथ बढाया, तो उसकी आत्मा की नींव तक हिल उठी। उसके कॉपते हाथों को जैसे किसी शक्ति ने पीछे खींच लिया। दिल धड धड करने लगा। आँखे बीभत्सता की सीमा तक फैल गई। उसे लगा, जैसे सामने हवा मे हजारो फैली हुई आँखे उसकी ओर घूर रही हो। वह किसी दहशत मे कॉपता बैठ गया। नहीं नहीं, उससे यह न होगा। फिर जैसे किसी आवेश मे उठ, उसने ठेलिया को उठाया कि लाश को नदी मे उलट दे, कि सहसा उसे लगा, जैसे फिर धनिया उसके सामने आ खडी हुई, जिसकी कसीफ साडी मे साबित कपडे से अधिक पेबन्द और जोडे लगी हुई थीं, जिसके जगह जगह बुरी तरह फट जाने से उसके अग के हिस्से दिखाई दे रहे थे। वह उन अगों को सिमट सिकुड कर

छिपाती जैसे बोल उठी—'देखो, अबकी अगर साडी न भेजी, तो मेरी दशा

"नही नहीं !" रगुआ कुहनी से आँखो को ढँकता चीख उठा। और ठेलिया जमीन पर छोड दी। फिर एक बार उसने चारो ओर शीघ्रता से देखा, और जैसे एक क्षण को उसके दिल की धडकन बन्द हो गई, उसकी आँखो के सामने अँधेरा छा गया, उसका ज्ञान जैसे लुप्त हो गया, और उस हालत के उसी क्षण मे उसके हाथो ने बिजली की तेजी से कफन खीचा, समेट कर एक ओर रख, ठेलिया उठा कर लाश को नदी मे उलटा दिया। तब जा कर जैसे उसे होश हुआ। वह जल्दी मे कफन ठेलिया पर रख उसे माथे के मैले गमछे से अच्छी तरह ढक दिया, और ठेलिया उठा दूसरी राह से तेजी से चल पडा।

कुछ दूर तक बिना उधर-उधर देखे वह सीधे तेजी से चलता रहा, जैसे वह डर रहा था, कि इधर-उधर देखने पर कही कोई दिखाई न पड जाय। पर कुछ दूर और आगे बढ जाने पर वह वैसे ही निडर हो गया, जैसे चोर सेंध से दूर भाग जाने पर। अब उसकी चाल मे धीरे-धीरे ऐसी लापरवाही आ गई, जैसे कोई विशेष बात ही नहीं हुई हो, जैसे वह रोज की तरह आज भी किसी बाबू का सामान पहुँचा कर खाली ठेलिया को धीरे-धीरे खीचता, अपने मे खोया हुआ, डेरे पर वापस जा रहा हो। अपनी चाल मे वह वही स्वाभाविकता लाने की भरसक चेष्टा कर रहा था, पर उसे लगता था, कि कही से वह बेहद अस्वाभाविक हो उठा है। और कदाचित उसकी चाल की लापरवाही का यही कारण था, कि वह रात होने के पहले शहर मे दाखिल होना नहीं चाहता था।

काफी दूर निकल जाने पर न जाने उसके जी मे क्या

आया, कि उसने पलट कर उस स्थान की ओर एक बार फिर देखा, जहाँ उसने भैंस की लाश को गिराया था। यह देख कर उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, कि कोई लड़का कोई काली चीज पानी मे से खींच रहा था। पर दूसरे ही क्षण उसे ख्याल आ गया, कि शायद यह वही डोमिन का लड़का है, जो दरी को पानी में से खींच रहा है। यह ख्याल आना था, कि उसकी हालत फिर बिगड़ गयी। उसे लगा, कि उसकी चोरी पकड़ ली गई। और वह फिर बेतहाशा ठेलिया को सड़क पर खड़खड़ाता भाग खड़ा हुआ।

लड़के ने अपनी माँ के सामने दरी रखी, तो वह पूछ बैठी—"क्यों, कफन क्या हुआ।"

लड़के ने कहा—"कफन तो वह खुद ले गया, माँ।"

यह सुन कर डोमिन को कोई आश्चर्य नहीं हुआ, जैसे उसे इस बात का पहले ही से शक था। वह योंही आँखें आसमान की ओर उठा बोल पड़ी—"हे भगवान, यह कैसा जमाना आया है, कि आदमी कफन तक नहीं छोड़ता"

उस दिन गाँव मे मलमल की हल्दी में रंगी साड़ी पहने बनिया पीला कुरता पहने अपने बच्चे को एक हाथ की उँगली पकड़ाये, और दूसरे हाथ मे छाक-भरा लोटा कन्धे तक उठाये, जब काली माई की पूजा करने चली, तो उसके पैर असीम प्रसन्नता के कारण सीधे नहीं पड़ रहे थे, उसकी आँखों से जैसे उल्लास छलका पड़ता था।

रास्ते में न जाने कितनी औरतों और मर्दों ने उसे टोक कर पूछा—"क्यों, बनिया, यह साड़ी रमुआ ने भेजी है न?"

और उसने हर बार शरमाई आखों को नीचे कर, होंठो पर उमड़ती हुई मुस्कान को बरबस दबा कर, सिर हिला जताया—हाँ।

मजनूँ का टीला

शरद पूर्णिमा की रात भीग चुकी थी। चाँद जोबन पर था। चाँदनी की उज्ज्वल मुस्कान की आभा में नयी दिल्ली रुपहली हो स्वप्न नगरी की तरह मोहक हो उठी थी। सुफेद सुफेद इमारतें चाँदनी की सुफेदी में एक रूप हो गयी थीं। काली-काली, चमकीली सिमेण्ट की सड़कें ऐसी लगती थीं, जैसे ज्योत्सना रानी ने अपनी रुपहली अलकों में काले काले रेशमी फीते बाँध रखे हों।

चारों ओर छाये हुए रहस्यमय सन्नाटे को तीर की नोक की तरह चीरती एक किश्तीनुमा, सुफेद कार की धीमी भरभरा-हट की आवाज मिन्टो रोडपर बही जा रही थी। लगता था कि कार बिलकुल नयी है, और उसका चालक भरसक इस प्रयत्न में है कि कार चलने में और भी कम आवाज हो। काली मिन्टो रोडपर धीमी चाल से दौड़ती हुई सुफेद किश्तीनुमा कार ऐसी लगती थी, जैसे जमुना के श्यामल जल की मन्द-मन्द धार में चाँदी की एक नाव आप ही बही जा रही हो।

मोड़ पर कार दाहिनी ओर मुड़ी, और चालक ने आहिस्ते से ब्रेक लगाया। जरा-सी घर्र की आवाज हुई। कार एक घने वृक्ष के साये में खड़ी हो गयी। दो चमकती हुई आँखें, जिनमें किसी अपने प्यारे को देखने की उत्सुकता मचल रही थी, बायें दरवाजे पर झाँकने लगीं। कोई नजर न आया। पलकें और

भी ऊपर उठीं। आँख इधर उधर हिली डुली। फिर भी कोई नजर नहीं आया। तब दरवाजे के बाहर एक सुफेद हाथ निकला। कलाई पर रेडियम घड़ी भूत की आँख की तरह चमक उठी। उन आँखों ने देखा, छोटी सूई बारह पर थी और बड़ी सूई ग्यारह पर। 'अभी पाँच मिनट हैं,' साँस में ही मिली हुई एक आवाज आयी। आँख अब भी घड़ी पर ही टिकी हुई थीं। छोटी सूई बारह पर थी और बड़ी सूई ग्यारह पर। छोटी सूई और बड़ी सूई। 'उहूँ। गलत है। बड़ी सूई को बारह पर होना चाहिये और छोटी सूई को ग्यारह पर, क्योंकि बड़ी सूई संकेत-स्थान पर पहुँच गयी है, पर छोटी सूई अभी पाँच मिनट बाद पहुँचेगी,' है सिसमिसाहट-भरी, अपने में ही घुटी सी आवाज आती गयी। फिर लगा, जैसे इन आँखों के सामने घड़ी की छोटी सूई ग्यारह पर आ गयी और बड़ी सूई बारह पर। आँखों के सामने हवा में एक धीमी कपकपाहट हुई। 'उफ, अगर ऐसा होता, तो मुझे पाँच मिनट के बदले पूरे एक घंटे तक प्रतीक्षा करनी पड़ती। कम्बख्त घड़ी के आविष्कारक ने बड़ी सूई को घंटे की और छोटी सूई को मिनट की सूई क्यों नहीं बनायी? उसे क्या पता नहीं था कि बड़ी सूई संकेत-स्थान पर सदा पहिले पहुँचती है, और छोटी सूई बाद में। शायद उसे पता न हो, शायद उसने अपनी जिन्दगी में कभी किसी लड़की को प्यार न किया हो।' फुसफुसाहट की आवाज अभी खत्म भी नहीं हुई थी कि दरवाजे पर दाँतों की दो पंक्तियाँ चमक उठीं, जैसे किसी की बाँछें खिल गईं हों।

अब छोटी सूई बारह पर थी, और बड़ी सूई छोटी सूई पर। आँखें घड़ी से उड़कर सामने बिछ गईं। सामने थोड़ी ही दूर पर चाँदनी भरी हवा में एक सुफेद कपड़ा हिलता-डुलता नजर आया। दरवाजे की चेन धीरे से बजी। एक हल्का सा

खटका हुआ, और दरवाजा खुल गया। कार से उतर कर एक सुफेदपोश युवक की आकृति पेड़ के साये में खड़ी हो गयी। हाथों ने उठकर गले की टाई की गाँठ ठीक की। पैंट की जेब से एक सुफेद, हल्का सा रूमाल निकला और चेहरे पर घूम फिर कर वापस जेब में चला गया। फिर नजरें सामने हुईं। पुत-लियों की धीमी फड़फड़ाहट से ज्ञात होता था कि युवक के शरीर में एक हल्की सनसनाहट दौड़ रही है। अब सामने चाँदनी में एक सफेद पोश युवती के शरीर की बाह्य रेखायें उभरीं जैसे सुफेद आर्ट पेपर पर किसी युवती के कलापूर्ण शरीर की बाह्य रेखाओं की छाप उठी हुई हो। उसका दाहिना हाथ हवा में उठा हुआ था, और उस हाथ की उंगलियों में एक काला रूमाल हिल रहा था। युवक ने मुँह से सीटी बजायी। लगा, जैसे पेड़ की शाख पर बुलबुल चहक उठी हो। युवती के शरीर की बाह्य रेखाओं में कम्पन हुआ। कानों ने आवाज की दिशा का संकेत किया। होठों पर मुस्कान थिरक उठा। सामने की चाँदनी जैसे और उज्ज्वल हो उठी। वह उस पेड़ की ओर बढ़ी। युवक की मुस्कराती आँखों के सामने युवती की तस्वीर सिनेमा की तस्वीर की तरह दूर से समीप आती गयी और स्पष्ट होती गयी। फिर साड़ी की हल्की सरसराहट और नरम कदमों की रबर के सैण्डिलों से निकलती हुई धीमी आवाज! युवक के हृदय की धड़कन कुछ तेज हो गयी। उसके पैर आप ही आगे को उठ गए। और दूसरे ही क्षण पेड़ की घनी छाया की पृष्ठ-भूमि पर श्वेत रेखाओं में नारी और पुरुष का घुला मिला अजन्ता शैली का एक चित्र खिंच गया। फिर साँसों ही साँसों में उच्छ्वासों की भाषा में ही कुछ नन्हे-मुन्ने, प्यारे-प्यारे, अस्पष्ट शब्द!

युवक ने सहारा दे युवती को कार में बैठाया। फिर आप

अन्दर हो, दरवाजा बन्द कर स्टार्ट की चाभी घुमायी। भर्र की एक आवाज हुई। कार एक हचकोला ले आगे सरकी। चाँदनी रात, मुस्कराती हुई फिजा, जिसमें जैसे मस्ती की बारिश हो रही हो, सुखमय निर्जनता और अकेली खुशनुमा कार धीमी हवा की रफ्तार से हमवार सड़क पर चलती। प्रेमियों के जोड़े को लग रहा था, जैसे व उड़न खटोले में बैठे चाँद और तारों के देश की सैर कर रहे हैं।

कार चली जा रही थी। और भरभराहट में लिपटी हुई ये बारीक ध्वनियाँ धीमे पवन की लहरियों में अङ्कित होती जा रही थीं।

"तुम्हें बहुत दर तक इन्तजार तो नहीं करना पड़ा न ?"

"नहीं। तुम बिल्कुल ठीक वक्त पर आ गयीं। मुझे डर तो था कि कहीं तुम्हें नींद न आ जाय।"

"नींद! इस खिलखिलाती चाँदनी में तो नींद का दिल भी मचल रहा होगा कि वह भी अपनी आँख खोले इस मुस्कराते चाँद को एकटक रात भर देखा करे। पर बेचारी नींद !"

"क्यों, सपने की रानी नींद पर इतनी करुणा क्यों बिखेरी जा रही है ?"

'नींद सपने की रानी है, यही तो उसके दुख का विषय है। जब तक बेचारी आँखें बन्द न करे, उसके सपने महाराज आने की कृपा ही नहीं करते।"

"तब तो, प्रीति, हमी खुशकिस्मत हैं, जो हमें एक दूसरे से मिलने के लिये अपनी आँखें बन्द नहीं करनी पड़ती।"

"हाँ, बल्कि इसके विपरीत हमें एक दूसरे के पास आने के लिये उस समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है, जब तक कि दूसरों की आँखें बन्द नहीं हो जातीं।"

एक हलकी हँसी की ध्वनि।

"क्या, इतनी रात गये तक भी तुम्हारे यहाँ कोई जग रहा था क्या ?"

"मत पूछो, प्रेम ! आज तो मैं बेहद परेशान हो गयी थी। न जाने कहाँ से मेरे पिताजी का एक मित्र शाम को ही आ धमका। चाय पी, फिर खाना खाया। मैंने सोचा, अब चला जायगा। पर वह मरदूद जो पिताजी से गप्प लड़ाने लगा, तो लगा, जैसे सुबह करके ही उठेगा। जब ग्यारह बज गया, तो मारे घबराहट के मेरा दम फूलने लगा। लगा, जैसे पूर्णिमा के चाँद पर एक ऐसा काला बादल आ छाया है, जो सुबह तक हटने का नहीं। दिल की उमंग, तुमसे मिलने की सारी खुशियाँ जैसे हवा हो गयीं। रह रह कर निराशा से उदास तुम्हारा चेहरा आँखों के सामने फिरने लगा। हृदय मार व्यथा के कसक उठा। आँखों में आँसू भर आये। आखिर तकिये में मुँह गड़ाये, कलेजे को हाथों से दबाये कुछ देर तक योंही पड़ी रही। फिर अपने को भुलाने की कोशिश की। मगर दिल था कि उसे किसी पहलू भी चैन ही नहीं मिलता था। क्या करती, सोचा क्यों न कोई उपन्यास ही पढ़ तबीयत बहलाऊँ। उठ कर टेबुल लैम्प का बटन दबाने ही वाली थी कि एक ख्याल दिल में आ चमका। चुटकी बजा मैं उठ खड़ी हुई। धीरे से कमरे की सिटकनी नीचे सरकायी। फिर चाकू ले कमरे के बाहर दीवार पर लगे स्विच-बोर्ड के सामने जा खड़ी हुई। एक बार इधर उधर आँख उठा भाँपा। माताजी के कमरे से खर्राटे की आवाज आ रही थी। अनीता के कमरे से नींद में डूबी हुई गहरी साँसें साफ सुनायी दे रही थीं। सिर्फ बाहर के कमरे से पिताजी और उनके मित्र की बातें सुनायी पड़ रही थीं। तार की ओर चाकू उठाते समय एक बार मेरा हाथ काँपा, पर इस चाँदनी रात में तुमसे मिलने की उत्कण्ठा इतनी तीव्र थी कि मैं दूसरे

ही क्षण अपने काँपते हाथ पर काबू पा गयी। तार का कटना था कि पिताजी के कमरे में एक शोर बरपा हो गया। कुर्सियों के इधर-उधर हटने की खड़खड़ाहट हुई कि मैं अपने कमरे में आ दरवाजे को उढ़का कर चारपाई पर ऐसे पड़ गयी, जैसे आठ ही बजे की सोयी हूँ। नौकरों के नाम बारी बारी से तो थोड़ी देर तक पिताजी चीखते चिल्लाते रहे। पर उस समय वहाँ था ही कौन? सब के सब खा-पीकर अपने क्वार्टर में चले गये थे। एक नौकरानी जरूर थी पर मैंने शाम को ही उसे साँट लिया था। आखिर उनके मित्र के दिमाग में भी जाकर अक्ल आयी। मैंने अपने कमरे से ही सुना, वह पिताजी से कह रहे थे—'ज्यादा जहमत न उठाये। काफी रात गुजर चुकी है। अब आप आराम करें।' पिताजी ने जैसे झुँझला कर कहा—'इन कम्बख्त नौकरों से तो तबीयत परेशान है। लाख चीखें-चिल्लायें, मगर इनके कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती।' थोड़ी देर बाद जब सब ओर सन्नाटा छा गया, तब जाकर मेरी जान में जान आयी।"

"तुम कितनी चतुर हो, प्रीति! तुम्हारी इस अनोखी सूझ की जितनी भी तारीफ की जाय, कम है।"

"प्रेम सब-कुछ सिखा देता है। दिल में चाह होनी चाहिये, फिर तो राह आप ही निकल आती है। हाँ, कभी-कभी इन पाबन्दियों से तबीयत झुँझला जरूर जाती है।"

"लेकिन इस लुक-छिप कर चोरी-चोरी मिलने में जो मजा आता है, वह भला क्या ... "

"सो तो ठीक है। पर एक दिन यही पाबन्दियाँ अगर बेड़ियाँ बन पैरों को जकड़ दें, तो शुरू जवानी के आँख मिचौली के इन खेलों का हश्र क्या होगा?"

"हमारे प्रेम का खेल हमारी जिन्दगी का खेल है, प्रीति! हम अपने को किसी हालत में भी पाबन्दियों के हवाले नहीं करेंगे? और ये पाबन्दियाँ भी तो तभी तक हैं, जब तक हम अपने पैरों पर खड़े नहीं हो जाते।"

"और यदि उस समय आने के पहले ही ..."

"ओह, प्रीति, आज तुम यों बूढ़ियों की-सी बातें कर रही हो? क्या आज कोई ऐसी बात हो गयी, जिससे तुम्हारे दिल में ऐसा भय उठ रही है?"

"नहीं नहीं प्रेम? अभी तो कुछ ऐसा नहीं हुआ। पर आज जो मुझे एक कड़वा अनुभव हुआ है, उससे मेरा दिल घबरा उठा है। ग्यारह बजे तक जब पिताजी का मिलन न हटा, तो यह समझ कर कि आज मैं तुमसे न मिल सकूँगी, मुझे जो पीड़ा हुई, वह अपनी तरह का मेरा पहला अनुभव था। इसके पहले मुझे ऐसे अनुभव का अवसर ही कहाँ मिला था। इसीलिये बार बार यह बात मेरे दिमाग में उठ रही है कि काश, कहीं ऐसा हो गया कि मैं तुमसे मिलने से मजबूर कर दी गयी, तो मेरी क्या हालत होगी?"

"ओह, इतनी सी बात से तुम घबरा गयी हो? नहीं, प्रीति, तुम्हारे प्रेम के जीवित रहते ऐसा कभी नहीं हो सकेगा। तुम्हारा प्रेम अपना सर्वस्व न्योछावर कर भी तुम्हें अपना बनायेगा। तुम अपने प्रेम पर विश्वास रखो! किसकी हिम्मत है, जो तुम्हें तुम्हारे प्रेम से अलग कर सके?"

"हाँ, प्रेम, तुम्हारे बिना अब मुझसे न रहा जायगा। मेरे रोम रोम में तुम बस गये हो।"

"प्रीति!"

"प्रेम!"

कार की चाल एक मिनट के लिये और भी धीमी हो गयी। फिर मिली हुई प्रेम का सन्तोष भरी लम्बी सॉसों की सिहरती हुई आवाज। कार फिर अपनी रफ्तार से चल पडी। फिर वही भरभराहट और उसमे लिपटी हुई बारीक ध्वनियॉ —

"तो आज कहॉ चलने का इरादा है ?"

"मैने चिट मे लिख तो दिया था।"

"ओह, मैं तो भूल ही रही थी। प्रम, तुम्हारे पास जब मैं होती हूँ, तो न जाने मेरे दिल दिमाग की क्या हालत हो जाती है। हॉ, वह मजनू का टीला है कहॉ ?"

"थोडी दूर और है, बडा ही सुरम्य स्थान है। देख कर तुम खुश हो जाओगी। हॉ, उस चिट को तुमने फाड दिया था न ?"

"फाडती क्यों ? उसे कलेजे से लगा मैने अपने चित्राधार मे रख छोड़ा है।"

सडक से मुड, थोडी दूर कच्ची सडक पर चल कार रुक गयी। दोनों उतर हाथ मे हाथ झुलाते चल पडे।

"उई !" प्रीति बायॉ पैर गड्ढे मे पड जाने से घुटने में लचक आ गयी। वह झुक कर पैर थाम, चीखकर बैठने को हुई कि प्रेम उसे हाथों मे सॅभालते परेशान-सा हो बोल पडा— "क्या हुआ ?"

पैर ऊपर उठा वह बोली —"मोच आ गयी।"

"कहॉ ?" और परेशानी जाहिर करता वह बोला।

"यहॉ !" घुटनेपर हाथ रखते उसने कहा।

"यहॉ ?" घुटनेपर हाथ रख, प्रीति की ओर ऑखे उठाये वह बोला।

"हॉं।"

"रास्ता जरा खराब है। बहुत कम लोग यहाँ आते हैं।" —धीरे-धीरे उसके घुटने को सहलाता वह बोला।

"बस करो! अब ठीक हो गया।"—उसका हाथ अपने हाथ में ले वह बोली।

प्रेम के कन्धेपर हाथ रखे वह कुछ बाएँ पैर से मचकती हुई चली। फिर धीरे-धीरे ठीक से पैर रखने लगी।

"वह जो मीनार दिखाई देती है न, वहीं है मजनू का टीला।" सामने हाथ से इशारा करते प्रेम बोला।

सामने चाँदनी के प्रकाश में जैसे अन्धकार का एक ऊँचा स्तम्भ धरतीपर खड़ा था। उसी की ओर आँखें उठाये प्रीति बोली—"बहुत पुरानी मालूम पड़ती है।"

"हाँ बहुत पुरानी है। लोगों का कहना है कि मजनू अपनी लैला की खोज में जब पहाड़ों, वीरानों और जङ्गलों की खाक छान रहा था, तो यहाँ भी उसके पद-चिन्ह पड़े थे। किसी दीवाने ने उन्हीं पद-चिन्हों की स्मृति स्वरूप यह मीनार खड़ी की थी।"

"ओह! तब तो प्रेमियों के लिये यह एक तीर्थ-स्थान है!" होठों पर मुस्कान और आँखों में चमक लिये प्रीति बोली।

"क्यों नहीं? लैला और मजनू, प्रेम की दो सब से चमकती अमर किरणें चमकती रहेंगी संसार के प्रेमियों की आँखों में प्रलय की आखिरी घड़ी तक चाँद और सूरज की तरह!" आत्म-विभोर-सा प्रेम बोला।

"आओ, जरा नजदीक से देखें!" मीनार की ओर मुड़ती, आँखों में असीम श्रद्धा लिये प्रीति बोली।

"देखो, काँटों में तुम्हारी साड़ी न उलझ जाय!" सामने की जङ्गली बेर की झाड़ी की ओर से प्रीति का बाजू पकड़

अपनी ओर खींचते प्रेम बोला—"पहले चलो, जमुना का आनन्द लूट लें। फिर लौटते उधर से होकर चलेंगे।"

"यहाँ जमुना कहाँ?" आँखों को ऊपर उठा पुतलियाँ नचाती प्रीति बोली।

"आओ भी तो! हाँ, जरा अपनी साड़ी को कब्जे में कर लो, वरना इन झाड़ियों के काँटों के प्रेम-प्रदर्शन से तुम तो परेशान होओगी ही, मेरी भी अँगुलियाँ उनसे तुम्हारे दामन को बार-बार छुड़ाने में खून-खून हो जायेंगी।" परिहास की एक मधुर हंसी हँसता प्रेम प्रीति के आँचल को उसकी कमर में लपेटता बोला।

आगे-आगे प्रेम झाड़ियों की टहनियों को हाथों से हटाता और उसके पीछे-पीछे प्रीति काँटों से बदन चुराती बढ़ती गयी।

" अब वे जमुना के ऊँचे कगार पर थे। सामने रेत के सपाट मैदान में चमकीली चाँदनी की चादर बिछी हुयी थी। उसके आगे जमुना की सुनील जल की झलमलाती हुयी धार ऐसी लग रही थी, जैसे चाँदी के मैदान से पिघले हुए नीलम की धार बही जा रही हो। कगार पर सटकर खड़े प्रेम और प्रीति खिलखिलाती हुई उत्फुल्ल आँखों से जैसे सामने बिखरे हुए असीम, उजले सौन्दर्य को पी जाना चाहते हों। एक टक सामने देखती ही प्रीति खोई-सी बोली—"प्रेम, अगर दूर से हमें इसके तरह कोई देखे, तो क्या समझेगा?"

"समझेगा कि आकाश का चाँद पृथ्वी पर उतर चाँदनी के गले में बाहें डाले जमुना की शोभा निहार रहा है।"

कह कर आँखों में जैसे एक नशा-सा भर उसने प्रीति की ओर देखा। प्रीति ने अपनी सीप-सी लम्बी लम्बी, बोझिल पलकें प्रेम की ओर उठाईं। प्रेम ने देखा, उन पलकों की आड़ में जैसे शराब का समन्दर लहरा रहा था। उसने आवेश में प्रीति

का हाथ अपने हाथ मे ले जोर से दबा दिया। हृदय का उमड़ता आनन्द साँस की राह निकल प्रीति के कपोल को सहराता निकल गया। ठगे-ठगे-से ही वे सभल कर एक-दूसरे का सहारा बने नीचे उतरे।

खिली हुयी चाँदनी हँसती हुयी रूमानी फिजा, गुलाबी, शीतल हवा मे बसी हुई रह-रह कर सिहरती हुयी हवा और चारो ओर दृष्टि की सीमा तक छाई हुयी खुशगवार, रहस्यमय खामोश, नीचे मिट्टी मिली हुयी कोमल रेत, ऊपर अमृत की बारिश करता चाँद, पीछे लैला-मजनूँ की प्रेम-कहानी का मूर्त रूप मजनूँ का टीला, सामने गोपियो के रस-भर गीतो का गुनगुनाती बहती जा रही जमुना! इन सब के बीच प्रेम और प्रीति! लग रहा था उन्हें, जैसे वे ख्वाबो की दुनियाँ से हवा मे पग रखते गुजर रहे हों सौन्दर्य और यौवन के सुगन्धित नशे में भूमते हुए।

तन्मयता मे ही प्रेम का हाथ मचल कर प्रीति की ओर बढा कि उसकी कमर मे एक आकर्षक झुकाव हुआ, और दूसरे ही क्षण वह खिलखिलाती हुई हिरण की तरह उछल क्रीडातुर-सी भाग खडी हुयी। शान्त वातावरण मे उसकी मधुर खिलखिलाहट से जैसे सैकडों चाँदी की नन्ही-नन्हीं घंटियाँ टुनटुना उठीं। प्रेम के कान जैसे अमृत से भर उठे, हृदय के तारों मे जैसे मधुर-मधुर गीतों की रागिनी बज उठी, आँखों से जैसे प्रेमासव छलक उठा। वह मुस्कराता लपका।

आगे-आगे हर दूसरे-तीसरे कदम पर मुड मुड कर खिलखिलाती, कौतुक-भरी, बडी-बडी आँखों से देखती भागती हुयी प्रीति और पीछे पीछे आँखों मे लबालब प्यार भरे प्रेम, जैसे उसका मन चाहता हो कि योंही छिटकी रहे चाँदनी की

मोहिनी मुस्कान थोड़ी भागती रहे प्रीति थोड़ी गूँजती रहे उसकी खिलखिलाहट और थोड़ा पीछे-पीछे दौड़ता रहे वह क्षितिज के छोर तक।

क्षितिज के छोर तक तो नहीं, हाँ, जमुना के छोर तक इस शोख सुन्दरता और अल्हड़ यौवन की क्रीड़ामय भाग दौड़ चलती रही। कछार के अधभीगे रेत पर थकी हुई प्रीति स्वतन्त्रता से दोनों पैर आगे को फैला, दोनों हाथों को पीछे की ओर रेत पर टेक, सिर पीछे को जरा लटका जोर से हाँफती हुयी बैठ गयी। आँचल बाँयें कन्धे से बाजू तक फैल लहरा रहा था, और लम्बी बेणी दाँई बाँह पर नागिन-सी कई बल खा लिपटी हुयी सी थी।

पास आ प्रेम उस सुन्दरता के अस्त व्यस्त पर मुक्त विलास को अतृप्त-सी आँखों से मन्त्र मुग्ध सा देखता रह गया।

"बैठो भी! तुमने तो आज दौड़ा कर मुझे परेशान कर दिया!" प्रीति ने आँखों को उसकी ओर मोड़ तनिक शिकायत के लहजे में कहा।

उसके दाहिने बैठ, उसकी बेणी को उंगली से छेड़ता, पलकें झुकाये प्रेम बोला—"शान्त सुन्दरता को देखते-देखते जब आँखें ऊब उठीं, तो उसे जरा छेड़ परेशान सुन्दरता का रूप देखने के लिये मन ललक उठा।"

"हूँ," आँखें मटका, बनती हुई प्रीति बोली—"तो अब कौन-सा रूप देखने का इरादा है?"

'नारी का सब से मनमोहक रूप!" प्रेम झटसे बोल उठा, जैसे इस प्रश्न के उत्तर को पहले ही से उसने सोच रखा था। और आँखों में एक मुस्कराता हुआ प्रश्न लिये वह प्रीति की आँखों में देखने लगा।

"यह कौन-सा है ?" आँखो में मचलती उत्सुकता को मुस्कराहट मे छिपाती वह बोली।

"नारी का रूठना !" प्रीति के कान के पास मुँह ले जाकर फुसफुसाया प्रेम।

"अच्छा ! तो लो मै रूठी !" कहकर आँचल का घूँघट आँख तक खींच, बाय हाथ से प्रेम की छाती को एक हल्का धक्का दे, घूम कर, सिर जरा झुका, आँखो मे हास्य-मिश्रित लज्जा लिये मुँह फेर लिया उसने।

उछल कर प्रेम उसके मुँह की ओर जा बैठा, और गर्दन नीचे कर, आँख उठा उसे देखते बोला—

'सुन्दर नार रूठे तो कौन न मनाये ! मान जाओ, मोरी रानी !" आँखो मे जैसे कलेजा निकाल कर प्रेम बोला।

"हटो भी ! यो कोई देखले, तो ?" हाथ से उसका मुँह हटाते शर्मायी-सी बनी प्रीति बोली।

"यो कोइ देखेगा, तो सोचेगा कि मानसरोवर के तट पर एक हँसो का जोडा एक दूसरे की गर्दन मे चोंच लिपटाये बैठा है !"

"अच्छा जी !' और कुछ कहना ही चाहती थी कि हँसी रोके न रुकी और वह खिलखिला कर हँस पडी।

प्रेम को लगा, जैसे जमुना के तट पर एक श्वेत कमल खिल उठा हो। फिर उठा उल्लसित आँखों से उसने एक बार आकाश के चाँद को देखा, फिर प्रीति को देख, जमुना पर आँखे टिका मुग्ध सा बोला— 'प्रीति, यह आईना-सी बहती हुई जमुना की धार, ऊपर जा-बजा छिटके हुए तारों के बीच मुस्कराता हुआ चाँद, नीचे नन्हीं नन्हीं लहरियों पर झूला-झूलता चाँद और तारो का मोहक देश। और इन दो चाँद और तारों की सुन्दर दुनिया के बीच बैठे हुए हम और तुम। लगता है, जैसे आज

सृष्टि का सारा सौन्दर्य, सारी सुषमा सिमट कर हमारे हृदयों में आ बसी है। प्रीति, आज के ये मधुर क्षण क्या जीवन में कभी भुलाये जा सकेंगे ?" कहते-कहते प्रेम का कंठ जैसे हृदय की आनन्दानुभूति की असीमता के आवेश में रुँध-सा गया। आत्म-विभोर-सी प्रीति ने उसकी छाती पर सिर टेक दिया। दोनों की आँखें आपही धीरे-धीरे मुँद गयीं जैसे दोनों अपनी आत्मा के लहराते हुए आनन्द-सागर में डुबकी लगा गये।

उसी समय मजनूँ के टीले के पास, बेर की झाड़ियों में पत्तों की खड़खड़ाहट हुई। फिर दो छायायें लम्बे-लम्बे कदम रखती कगार पर आ खड़ी हो, इधर उधर चौकन्नी नजरों से देखने लगीं। दूर जमुना तट की ओर हाथ उठा एक ने फुसफुसाहट के स्वर में दूसरे से कहा—"वह देखो ! वही होंगे। तुम जाओ। मैं उस मीनार में छिप जाता हूँ। होशियारी से काम लेना !"

कहने वाली छाया मीनार की ओर बढ़ गयी और दूसरी छाया जमुना की ओर।

प्रेम और प्रीति के पीछे कुछ दूर पर खड़ी हो छाया ने उन्हें गौर से देखा। फिर होठों में ही बुदबुदाया—"वही तो हैं !" और हल्के कदम रखती वह ठीक उनके पीछे जा खड़ी हुई, और उन्हें फिर एक बार ध्यान से देख धीरे से बोली—"कौन, प्रेम और प्रीति ?"

प्रेम और प्रीति की तन्मयता टूटी। अकचका कर आँखें पीछे की ओर मुड़ीं, तो देखा, एक लम्बा व्यक्ति होंठों पर सुस्मित हास लिये उन्हीं की ओर निहार रहा था। उसके सिर के लम्बे-लम्बे सुफेद बाल गर्दन तक लटके हुये थे, सुफेद दाढ़ी छाती पर लहरा रही थी, सुफेद कुरता घुटनों के नीचे तक और उसके नीचे सफेद ही तहमद पाँवों तक को ढँके हुए था। प्रेम और

प्रीति की आँखों में भय काँप उठा। प्रीति घीरयती हुई सी बोल पड़ी—"भूत !" और उसे ऐसा लगा, जैसे वह बेहोश सी हो रही है। नन्हीं-सी जान !

प्रेम की काँपती आँखों के सामने बचपन की सुनी हुई भूतों की कितनी ही डरावनी कहानियों की घटनायें क्षण भर में घूम गयीं। उसका रोम-रोम काँप उठा।

"बेटा ! यों घबराओ नहीं।' छायाने निहायत ही नरम स्वर में कहा— 'मैं भूत नहीं हूँ। और तुम तो सच्चे प्रेमी हो। तुम्हें भूत और भविष्य का डर क्यों ? प्रेमी का वर्त्तमान तो इतना सरस, इतना सुखद होता है कि उसे न तो कभी भूत का ख्याल आता है और न उसे भविष्य की चिन्ता ही सताती है !"

प्रेम की सहमी हुई नजर छाया के सौम्य चेहरे पर धीरे-धीरे उठी। गले के नीचे कई बार कुछ उतार कर उसने किसी तरह टूटे स्वर में कहा—"तो ता तुम तुम कौन हो ? हम हमारा नाम तुम्हें कैसे मालूम ?"

सहमी हुई प्रीति को प्रेम के पीछे खिसकती देख छाया मुस्करायी। फिर बोली—"मैं मुहब्बत का फरिश्ता हूँ। दुनिया का कोई प्रेमी मुझसे अनजान नहीं। मैं दुनिया में घूम-घूम कर सच्चे प्रेमियों को आशीष देता हूँ। मैं परसों रोमियो और जुलियट की कब्र पर गया था परसों यूसुफ और जुलैखा के मदफन पर था, कल, शीरीं और फरहाद के मजार की जयारत की थी और आज मजनूँ के टीले की सैर को निकला हूँ। मुझे खुशी है कि यहाँ तुम जैसे सुन्दर प्रेमियों का जोड़ा मुझे देखने को मिला। प्रेम और प्रीति ! वाह क्या नाम हैं तुम्हारे ! जैसे भगवान ने दुनिया में तुम्हें इसीलिये भेजा है कि तुम एक दूसरे

को प्यार करो, एक दूसरे के गले मे बाहें डाले मुहब्बत की मीठी ज़िन्दगी गुजारो !"

डर हुए प्रेम और प्रीति को लगा, जैसे किसी ने जादू के बल से उन्हें अभय प्रदान कर दिया हो। उन्होंने एक-दूसरे को मुहब्बत भरी नजरों से देखा और उठ खड़े हुए। और आँखों में अपार श्रद्धा और भक्ति भर उन्होंने मुहब्बत से फरिश्ते की ओर देखा, जैसे कोई पुजारी अपने इष्ट देवता की मूर्ति की ओर देखता है।

"क्यों, बेटे, मेले की सैर कर चुके ?" एक रहस्य भरी दृष्टि उन पर फेंकते हुए उसने कहा।

"अभी तो नहीं," आज्ञाकारिता के भार से सिर झुकाये आदरसूचक स्वर में प्रेम ने कहा।

"तो आओ, मैं भी उधर ही चल रहा हूँ," टीले की ओर मुड़ते हुए उसने कहा।

प्रेम और प्रीति ने एक-दूसरे की आँखों में देखा, जैसे वह पूछना चाहते हों, 'क्यों चला जाय ?'

'सच्चे प्रेमी यों नहीं डरते, बेटे !" उनको यों खड़े देख उसने मुड़कर कहा—'सच्चा प्रेमी यों फूंक-फूंक कर पग नहीं उठाता, जरूरत पड़ने पर वह दार को भी अपनी प्रेयसी की बाहें समझ गले में लिपटा लेता है ! आओ, आओ मेरे साथ !"

चलते-चलते उसने पूछा—'तो तुम एक दूसरे को बहुत प्रेम करते हो न ?'

"जी, हम एक दूसरे पर जान देते हैं," प्रेम ने कहा।

"तुम लोगों के माँ बाप को मालूम है कि तुम एक-दूसरे को इतना प्रेम करते हो ?"

"जी, नहीं, हम दो के सिवाय यह बात किसी को मालूम नहीं।"

"मान लो, तुम्हारे माँ-बाप को यह बात मालूम हो गयी, तो ?"

"तब तो गजब हो जायगा! हम एक-दूसरे से मिल भी न सकेंगे ?"

"फिर ?"

"फिर न पूछिये, हम पर क्या गुजरेगी ?"

"सुनूँ भी तो ?"

"उस वक्त हम एक बार साफ साफ उनसे कह देंगे कि हम एक दूसरे को बहुत प्यार करते हैं। हमारी शादी कर दो, वरना ..."

"हाँ हाँ, कहो, वरना ?"

"वरना हमारी जिन्दगी तबाह हो जायगी! हमारी आशायें कुंठित हो जायेंगी! हम लुट जायेंगे! हम पागल हो जायेंगे! हम आत्म-हत्या कर लेंगे!"

"आत्म हत्या कर लेंगे ?"

"जी," प्रेम ने गले की टाई ढीली कर कहा। लग रहा था, जैसे कोई उसका गला घोंट रहा हो।

"और तुम, प्रीति ?"

"मैं ... मैं भी आत्म-हत्या कर लूँगी," गले से कुछ उतार कर प्रीति बोली, जैसे उसका दम घुट रहा हो।

"आत्म-हत्या ?" कहकर एक बार मुहब्बत का फरिश्ता जोर से हँसा। उसकी हँसी की गूँज से जैसे शान्त वातावरण चिहुँक-सा गया।

उसकी ओर झलकती आँखों में कुछ छिपाये-से देखते प्रेम बोला—"क्यों, आप इस तरह हँसे क्यों ?"

"हँसा तुम लोगों की आत्म-हत्या की बात पर, बेटा। कितने भोले प्रेमी हो तुम लोग ! "तुम लोगों की शादी नहीं हुई, तो आत्म-हत्या कर लोगे। जैसे शादी ही तुम्हारे प्रेम की मंजिल है। क्यों ?"

"जी ! प्रेम में तड़पते हुए दो दिलों का हमेशा के लिये एक हो जाना ही तो प्रेम की मंजिल है ।" प्रेम ने बहुत सोच कर कहा।

"नहीं, वह प्रेम की मंजिल नहीं है। वह तो एक दूसरे पर अपना एकाधिपत्य प्राप्त करने की चाह की मंजिल है। वहाँ दो दो ही रहते हैं। एक कहाँ हो पाते हैं ? जहाँ दो हैं जहाँ दुई है, वहाँ प्रेम नहीं है। प्रेम अपनी मंजिल स्वयं है। वह स्वयं ही दुई या अनेकता का अन्त है। उसके लिये कोई दूसरा नहीं। सब वह स्वयं ही है, स्वयं ही वह सब ! मजनूं का प्रेम प्रेम था। उस प्रेम ने सारी सृष्टि को, मय मजनूं के, एक कर दिया था ! वह एक लैला का रूप था ! चाँद सूरज, फूल-काँटे, ईंट-पत्थर, यहाँ तक कि सृष्टि का जर्रा-जर्रा उसके लिये लैलामय हो गया था !"

"उँह !" मुँह में जैसे कड़वाहट भर प्रेम बोला—"आप तो फरिश्तों की भाषा में बातें करने लगे। मेरी समझ में खाक नहीं आ रहा है। मैं तो जानूँ, मजनूं लैला से प्रेम करता था। जब उसका प्रेम सफल न हुआ, तो उसने आत्महत्या कर ली। उसी तरह मैं और प्रीति एक-दूसरे को प्रेम करते हैं। जब हमारा प्रेम सफल न होगा, तो हम भी आत्महत्या कर लेंगे। क्यों, प्रीति ?"

प्रीति ने योंही सिर हिला दिया।

"नहीं, बेटा, मजनू ने आत्महत्या नहीं की। मजनू स्वय की कोई हस्ती तो रह नहीं गयी थी, जिसका अन्त वह आत्म-हत्या से करता। उसके लिये सारी सृष्टि लैला थी, लैला सारी सृष्टि थी। उसके लिये उसकी लैला क्या मिट गयी, उसकी सारी सृष्टि मिट गयी, वह स्वय मिट गया। प्रेम के रहस्य से अनभिज्ञ दुनिया ने समझा, मजनू ने आत्महत्या कर ली। ह ह !"

प्रेम हक्का बक्का सा गया। उसके कण्ठ से कोई बोल न फूटा।

"क्यो, बेटा, चुप क्यो हो गये ?"

"जी, मेरी समझ मे कुछ आ नहीं रहा है। होगा कुछ।" प्रेम ने ऐसे कहा, जैसे उसे उस बात से कोई दिलचस्पी न हो।

"खैर !" प्रीति की ओर एक रहस्य भरी दृष्टि डाल प्रेम से उसने कहा—"एक बात मे तो तुम मजनू से अधिक सौभाग्य शाली हो !"

"वह क्या ?" प्रेम उत्सुक हो बोला।

"वह यह है कि मजनू की लैला रात सी काली थी, तुम्हारी प्रीति चॉद की तरह गोरी है !"

"जी !" कुछ शरमाया सा कह प्रेम ने प्रीति की ओर ऑखे उठायीं, तो उनमे एक हर्षमिश्रित गर्व की चमक थी।

"अगर कहीं लैला सी काली लड़की से तुम्हें प्रेम हो गया होता तो ?"

"उँह, मैं क्यों वैसी लड़की से प्रेम करता ?" कहकर उसने एक प्रश्न सूचक दृष्टि से प्रीति को देखा।

"जैसे तुमने प्रीति से किया।"

"आप मुहब्बत के फरिश्ता होकर भी ऐसी बाते क्यो कर

रहे हैं? कहीं प्रेम भी किया जाता है? अरे वह तो स्वयं ही हो जाता है। मेरा और प्रीति का संयोग था, सो हो गया।" कहकर प्रेम ने मुहब्बत के फरिश्ते की ओर ऐसे देखा, जैसे गुरू की कोई गलती पकड़ने के बाद विद्यार्थी उसकी ओर देखता है।

"जब संयोग ही की बात है, तो मान लो कि तुम्हारा और लता का, या माधुरी का संयोग सम्भव हो जाय। तब?"

"एक दिल से एक ही को प्यार किया जा सकता है।"

"सो तो तुम ठीक कह रहे हो। अच्छा, मान लो, तुम्हारे ही जैसा किसी और का दिल तुम्हारी प्रीति को प्यार करने लगे। तब?"

"मेरे रहते किसका साहस है, जो प्रीति की ओर आँख भी उठा सके?" आवेश में बोला प्रेम।

"शाबाश!" आँखों में कुछ छिपाते हुए उसने कहा—"अच्छा, आओ, मजनूं के पद-चिन्ह के तो दर्शन कर लो!"

सब मीनार की ओर बढ़े।

"तुम लोगों ने आगरे का ताज देखा है?"

"जी, हाँ! वह मुमताज और शाहजहाँ के शाही प्रेम का दुनिया के प्रेमियों के लिए एक नायाब तोहफा है। जैसा शाही उनका प्रेम था, वैसा ही शाही उसका अमर स्मृति-चिह्न! जैसे चाँद के टुकड़ों से उसकी रचना हुई हो, जैसे संसार का सारा सौन्दर्य कला के साँचे में ढल यमुना के तट पर आ बैठा हो!"

"और यह मजनूं के टीले की मीनार?"

"ऊँह! यह तो वही हुआ कि कहाँ राजा भोज और कहाँ भोजवा तेली! उस शाही ताज का इस कूड़े के ढेर से

मुकाबिला ही क्या ? मालूम होता है, आपने अभी तक ताज को देखा नहीं है।"

"पास से तो नहीं, हाँ, दूर से देखा जरूर है। मुझे तो लगा कि वह एक कागज का खुशनुमा फूल है। और यह मजनूँ के टीले का मीनार इन बेर की जंगली झाड़ियों के बीच खिला हुआ एक जंगली गुलाब का फूल है। इस फूल में जो सुगन्ध की खुशबू है, उसमें कहाँ ?"

प्रेम कुछ बोले कि "लैला ! लैला ! " की कराह भरी पुकारें जैसे कहीं दूर से आयीं।

प्रेम चौंक कर आवाज की ओर कान करते हुए बोला—"यह आवाज कहाँ से आ रही है ?"

"यह दीवाने मजनूँ की लैला-लैला की पुकार है, बेटा ! यहाँ के ज़र्रे ज़र्रे में उसकी पुकार बसी हुई है। कयामत की आखिरी घड़ी तक उसकी पुकार की यह आवाज गूँजती रहेगी ! क्या ताज के पास भी तुमने शाहजहाँ के प्रेम की कोई पुकार सुनी है, बेटा ?"

प्रेम सहसा कुछ उत्तर न दे सका।

क्रमशः पास आती हुई फिर वही कराह-भरी लैला-लैला की पुकार !

"है ! यह पुकार तो बढ़ती ही जा रही है। यह गूँज नहीं मालूम होती। यह तो जैसे सचमुच कोई लैला-लैला पुकारता हमारी ओर भागा आ रहा है। यह मजनूँ का भूत तो नहीं ?" कहते-कहते प्रेम के रोंगटे खड़े हो गये। काँपते हुए हाथ से ही उसने प्रीति की बाँह पकड़ उसे अपनी ओर खींच लिया। प्रीति के दिल की धड़कन बढ़ गयी।

"हो सकता है, बेटा ! कदाचित मजनूँ की रूह आज फिर अपनी लैला के फिराक में निकली हो। पर तुम इस कदर

घबरा क्यों रहे हो ! सच्चे प्रेमी यों नहीं घबराते, बेटा !"

"वह, वह देखो ! कोई पागल लैला-लैला पुकारता हमारी ही ओर लपकता आ रहा है। प्रीति प्रीति, चलो, चलो। हमें कोई खतरा मालूम होता है !" काँपती हुई आवाज में कहता प्रेम मुडा।

पास ही मीनार की बगल से एक डरावनी छाया हाथ में झलझल करती कटार लिये, खून सी लाल-लाल आँखो से गुरेंरती 'लैला-लैला' चीखती बढी।

मुहब्बत के फरिश्ते ने जोर से एक अट्टहास किया।

थर-थर काँपते पैरों से प्रेम और प्रीति भागे-भागे कि उस डरावनी छाया ने जोर की एक थर्राती हुई चीख की, और लपक कर प्रेम की छाती की ओर कटार बढा प्रीति का हाथ पकड खुशी से चीख उठी—"मेरी लैला ! मेरी लैला !"

प्रेम के मुँह से एक चीख निकल गयी। वह हडबडा कर प्रीति का बाजू छोड भाग खडा हुआ। हाथ छुडाने की कोशिश मे छटपटाती प्रीति 'प्रेम-प्रेम' पुकारती बेहोश हो उस छाया की बाहों मे आ रही।

मुहब्बत का फरिश्ता ने थोडी दूर तक प्रेम का पीछा करने का नाट्य कर जोर से हँसता हुआ पुन मीनार से पास लौट आया।

सडक से जब कार की भरभराहट की आवाज आयी, तो छाया मुहब्बत के फरिश्ते से बोली—

"लो, सँम्भालो प्रीति को ! देख लिया न इनके प्रेम का नाटक !"

'हाँ ! 'बहुत शोर सुनते थे पहलू मे दिल का, जो चीरा, तो एक कतरए खूँन निकला।" कह कर वह प्रीति को सम्भालने बढ गया।

न जाने कहाँ से बादल का एक सुफेद टुकड़ा उड़ता-उड़ता आ चाँद पर छा गया। उस धुँधली चाँदनी में प्रीति को उठाये वे दोनों सड़क की ओर जा रहे थे।

❀ ❀ ❀ ❀

दूसरे दिन सुबह चाय के समय प्रीति के पिता, उनके रात वाले वह मित्र, अनीता और उसकी माँ चाय पर प्रीति के इन्तजार में बैठे हुए थे।

देखते देखते जब पन्द्रह मिनट बीत गये, तो पिता ने कहा—"अनीता, जरा देख तो, बेटी, प्रीति कहाँ रह गई। चाय ठण्डी हो रही है।"

अनीता उठ प्रीति के कमरे में गई, तो देखा, प्रीति अस्त-व्यस्त-सी तकिये में मुँह गड़ाये सिसक रही थी। उसके सिर के बाल बेढंग तौर पर इधर-उधर बिखरे हुए थे। सिल्क की सुफेद साड़ी में कितनी ही शिकनें पड़ी हुई थीं।

"जीजी, जीजी!" घबराई हुई अनीता प्रीति के पलंग की ओर चिल्लाती हुई लपकी। प्रीति अकचका कर, सिर उठा, आँसों को पोंछ उठ कर बैठ गयी।

अनीता उसके गले में बाहें डाल कर उतावली-सी बोली—"क्यों, जीजी, तुम रो क्यों रही थी?"

"नहीं तो," भीगे गले से कह प्रीति अपने बालों को अंगुलियों से ठीक करने लगी-खोई खोई हा-सी।

"वाह, अभी तो तुम सिसक रही थीं। मैं कहूँ "

"कुछ नहीं, अनीता, मैं ठीक हूँ।" कह कर उसने आँचल सिर पर ठीक से रखा और उठ कर खड़ी हो गयी।

"तो चलो चाय पर! पिताजी कब से इन्तजार कर रहे हैं!" उसके गले में बाहें डाल फिर झूलती-सी अनीता बोली।

"तुम चलो, मैं आ रही हूँ। जरा कपड़े बदल लूँ।"

अनीता चली गयी। प्रीति तौलिया उठा नल की ओर बढ़ गयी।

प्रीति जब कपड़े बदल, सज-सँवर, अपने कमरे से निकली तो उसने बहुत कोशिश की कि रोज की तरह उसके होंठों पर स्वाभाविक मुस्कान आ जाय। पर जैसे वह स्वयं को ही कुछ बदली-बदली सी लग रही थी। मनमें तो आया कि आज वह चाय पर न जाय। पर ऐसा करने से पता नही वह लोग क्या सोचने लगे। फिर अनीता ने उसे रोते भी तो देख लिया है। कहीं वही न कुछ कह बैठे। निदान किसी तरह अपने को वश मे कर वह चाय पर जा बैठी। उसके बैठते ही पिता बोल पड़े—"क्यों, बेटी, तबीयत तो ठीक है न ? बड़ी देर कर दी !"

"जी, जरा कपड़े बदल रही थी" आँखे नीचे किये ही कह दिया प्रीति ने और अपने को व्यस्त करने के लिये उसने चाय की प्याली उठा ली।

"क्यों ? कुछ खाओगी नहीं ?" पिता ने फिर पूछा।

"नहीं, आज कुछ खाने को जी नहीं चाहता है," कह कर उसने प्याली होंठों से लगा ली।

"अच्छा, अच्छा ! चाय ही पी लो !" कह कर पिता ने अपने मित्र की ओर कनखियों से देखा। उनके मित्र ने होंठो में ही मुस्करा दिया।

चाय की कुछ चुस्कियाँ ले पिता फिर बोले—"प्रीति की माँ, रात मैने एक अजीब सपना देखा।"

"क्या देखा ?" कुछ उत्सुक-सी प्रीति की माँ मुँह से प्याला हटाते बोलीं।

"देखा कि," प्रीति की ओर एक दबी नजर फेंक वह बोले

"रात के बारह बजे एक चोर मेरे घर में घुस आया है। सबको सोया देख वह प्रीति के कमरे में घुसा और उसे गोद में उठा कमरे से बाहर हुआ कि मैंने उठ कर उसकी कलायी पकड़ ली।"

"सच, पिताजी? आपने उसकी कलायी पकड़ ली?" बोली अनीता मुस्कराती आँखों को नचाती बोल पड़ी।

"हाँ, बेटी! फिर तो वह प्रीति को छोड़ भाग खड़ा हुआ। मैं चोर-चोर चिल्ला पड़ा कि मेरी नींद खुल गयी।"

प्रीति का मन न जाने कैसा होने लगा। वह उठने को हुई, तो पिता फिर बोल पड़े—"क्यों, बेटी, चाय पी चुकी?"

"जी, जरा आज मुझे कालेज का अधिक काम करना है," कह वह सिर झुकाये ही उठ खड़ी हुई।

"अरे, थोड़ी देर तो और बैठो, बेटी!"

प्रीति बैठ तो गयी, पर उसके दिल में जैसे हौल-सा हो रहा था।

"क्यों, प्रीति की माँ, तुम चुप कैसे हो गयीं!" पिता ने उनकी ओर देखते कहा।

"तुम्हारा सपना सुन मुझे तो चिन्ता हो गयी। कहीं मेरी बेटी पर कोई आफत आने वाली न हो।"

"अरे, तुम भी क्या बूढ़ियों सी बातें करने लगीं! जानती हो, वह चोर कौन था?"

"कौन था वह?" आँखें फैला सहमी सी वह बोलीं।

"वह, वह," प्रीति की ओर आँख कर, मुस्करा कर बोले वह—"वह प्रेम था!"

"पिता जी!" प्रीति सिर उठा चीख सी उठी।

"बेटी, तुम यों घबरा क्यों रही हो? और सुनती हो, प्रीति की माँ, मैंने सोचा है कि प्रीति की शादी प्रेम से कर दूँ।

जाय। यह उसे बहुत चाहती है।"

"नहीं-नहीं, मैं उससे नफरत करती हूँ! मैं उसका मुँह तक देखना नहीं चाहती! वह वह" अत्यधिक आवेश के कारण उसके होंठ काँप कर रह गये।

"ऐसा क्यों, बेटी!" धीरे से पिता ने पूछा।

"वह वह रात मुझे भूतों के बीच छोड़ कर भाग गया!" अनजाने में ही प्रीति के मुँह से ये शब्द निकल पड़े, जैसे वह ख्याल ही उसके दिमाग में चक्कर लगा रहा था, और उसे मतिभ्रम-सा हो गया था।

"भूतों के बीच छोड़ गया था! तो फिर यहाँ कैसे आयीं?" कृत्रिम आश्चर्य प्रकट करते वह बोले।

"हाँ, मैं यहाँ कैसे आ गई?" चकराई-सी प्रीति ने जैसे स्वयं से पूछा।

"यह तुम लोग क्या पागलों सी बातें कर रहे हो?" प्रीति की माँ जैसे कुछ न समझ प्रीति को पागल-सी आँखों से देखती हुई बोलीं।

मिश्र ने अपनी उगली से पिता की बगल में खोद कर आँखों से कुछ इशारा किया।

पिता जेब से एक चिट निकाल प्रीति की ओर बढ़ाते बोले—"इसे तुम पहचानती हो?"

"यह आपके हाथ कैसे लग गया? ओफ!" प्रीति की आँखों के सामने की सारी चीजें जैसे चक्कर में आ गईं।

"कल शाम को एक जगह भेजने के लिये तुम्हारे एक चित्र की जरूरत थी। तुम्हारा चित्राधार अनीता से मँगवाया, तो उसमें यह चिट पड़ा मिला। पढ़ा, तो चित्र भेजने की बात भूल गया। उसी वक्त अपने इस जिगरी दोस्त को बुला भेजा।

इनसे राय ली, तो यह तय हुआ कि तुम लोगों के प्रेम नाटक में हम भी अपना एक दृश्य जोड़ देखें कि क्या होता है। जो हुआ, सो तुम्हें मालूम है। यह मेरे वही मित्र हैं, जिन्होंने मुहब्बत के फरिश्ते का अभिनय किया और पागल मजनूँ स्वयं मैं था।"

"पिताजी!" चीख मार मेजपर सिर पटक प्रीति बिलख-बिलख कर रो पड़ी।

पिता उठकर, उसके पास जा, उसके बालों में हाथ फेरते स्नेह-सने स्वर में बोले—"बेटी, मुझे खुशी होती, अगर प्रेम मेरी कसौटी पर सच्चा उतरता। मगर वह तो झूठा था। वक्त पर उसकी कलई खुल गई। नहीं तो, न जाने उसका बनावटी प्रेम तुम्हें क्या क्या रंग दिखाता। बेटी, खुश होओ कि शुरू जवानी में ही तुम्हें एक ऐसा सबक मिल गया। इस सुन्दरता और शुरू की जवानी के दिलफरेब खेलों ने न जाने कितनी मासूम कलियों को खिलने के पहले ही मसल कर फेंक दिया है। मैं नहीं चाहता कि मेरी बेटी भी यों जवानी के हाथों एक खिलौना बन हमेशा के लिये टूट जाय।

'प्रीति की माँ, अब तुम इसे सभालो। मैं अपने मित्र को विदा कर दूं। उन्हें देर हो रही है।"

माँ और अनीता प्रीति की ओर मुस्कराती हुई बढ़ीं। पिता और उनके मित्र मुस्कराते हुए बाहर निकल गये।

कोड़ों की बौछार में

आखिर बड़े भैया चल बसे। माँ की कोई कोशिश उन्हें बचा न सकी। मृत्यु के सामने किसकी कोशिश कारीगर हुई है, जो माँ की होती ? किन्तु माँ को जाननेवालों का कहना है, कि यदि प्रत्यक्ष रूप से मृत्यु माँ से लड़ कर उनके आँचल के साये में पड़े बेटे के प्राण अपनी पूरी शक्ति लगा कर भी लेने का प्रयत्न करता, तो माँ के सामने उसे मुँह की खानी पड़ती। लोगों की यह धारणा ऐसे ही नहीं बनी थी। इसका एक जबरदस्त कारण था। यों तो कोई भी माँ अपने बेटे के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर कर सकती है, किन्तु बड़े भैया की माँ ने अपने बेटे के लिये जो किया, वह कितनी माँयें कर सकती हैं कहना मुश्किल है।

बड़े भैया तीन भाई थे। पिता साधारण रोजगारी थे, और माँ साधारण स्त्री थी। किसी में किसी तरह की कोई असाधारणता या विशेषता न थी। माता-पिता अपने बेटों को क्रमशः बड़े भैया, मझले भैया और छोटे भैया कह कर पुकारते थे। यों उनके एक-एक नाम और थे, किन्तु माता-पिता के दिये प्यार के नामों से ही उन्हें सारा गाँव पुकारता था।

कुछ साधारण पढ़ने-लिखने के बाद ही बड़े भैया पिता के रोजगार में सहायता देने लगे। बड़े बेटे होने के कारण पैतृक व्यवसाय का भार उन्हीं के कन्धों पर पड़ने वाला था, इसलिये पिता ने जल्द से-जल्द उन्हें काम पर लगा देना ही

उचित समझा। बड़े भैया भी जी-जान से काम करने लगे। चारों ओर से अपने ख्यालों को समेट कर, वह अपने व्यवसाय में ऐसे जुट गये, कि बस उसी के होकर रह गये। उन्हीं के अध्यवसाय के कारण घर की आमदनी भी बढ़ गई, जिससे शेष दोनों भाइयों को खूब पढ़ाने का हौसला पिता को हुआ। बड़े भैया ने भी भाइयों को पढ़ाने में खूब जोश दिखाया। अब वह अपनी जिम्मेदारी भी खूब समझने लगे थे। अधिक-से-अधिक कमाने की चेष्टा में ही वह रात दिन लगे रहते, ताकि भाइयों की पढ़ाई में किसी प्रकार की अड़चन न पड़े। एक तरह से यही उनके जीवन का ध्येय बन गया।

सच कहा जाय, तो पढ़ने लिखने का दिमाग छोटे भैया को ही मिला था। इसका सबसे बड़ा सबूत यही था, कि उम्र में मँझले भैया से तीन साल छोटा होने पर भी वह मँझले भैया के दर्जे में ही पढ़ता था। हर विषय में वह इतना तेज था कि अध्यापक उसकी तारीफ करते न थकते। मँझले भैया के लिये यह लज्जा का विषय ही हो सकता था। और कभी-कभी तो अध्यापक और दूसरे लोग भी उन्हें छोटे भैया के सामने ही लज्जित करने का प्रयत्न करते। पर मँझले भैया इसे कभी बुरा न मानते। कोशिश कर अपने को आगे बढ़ाने का प्रयत्न अवश्य करते, किन्तु वह अपने जेहन के बोदेपन से मजबूर थे। अकसर उन्हें अपने छोटे भैया से भी कोई हिसाब-किताब करने में सहायता लेनी पड़ती। ऐसा करते वक्त उनके मन में क्या उठता था, यह तो नहीं मालूम, किन्तु इतना तो अवश्य है, कि धीरे-धीरे उनका मन पढ़ने-लिखने से उचटाने लगा। सचमुच उनके लिये यह एक बड़ी विकट परिस्थिति थी। यों वे छोटे भैया को घर के सब लोगों की ही

तरह खूब मानते थे, प्यार करते थे, किन्तु रोज रोज अपने छोटे भाई के सामने नीचा देखना उन्हें बुरी तरह खलता न हो, यह कैसे कहा जा सकता है? कई बार दबे दबे उन्होंने पिता जी और बड़े भैया से कहा भी, कि उन्हें भी घर के कारोबार नहीं लगा दिया जाय। पर उन्होने यही कह कर हर बार टाल दिया, कि कम-से-कम वह हाई स्कूल तो कर ले। विवश हो उन्हें अपनी पढ़ाई जारी ही रखनी पड़ी। यों साथ-साथ दो भाइयों के पढ़ने से एक फायदा यह भी था, कि एक की फीस माफ थी। पिता जी सोचते थे, कि एक ही फीस से दोनो पढ़ते हैं, फिर क्यों एक की पढ़ाई छुड़ा दी जाय।

यों मँझले भैया की पढ़ाई का क्रम तो जारी रहा, पर वह हर दम इसी कोशिश में रहते, कि उनकी पढ़ाई किसी न-किसी तरह छूट जाय, और वह रोज-रोज की एक जिल्लत से छुटकारा पा जायँ।

बिल्ली के भाग्य से छींका टूट गया। देश में असहयोग का आन्दोलन छिड़ा। दोनों भाई हाई स्कूल के आठवें दर्जे में पढ़ रहे थे। उस समय मँझले भैया की उम्र सोलह साल और छोटे की उम्र तेरह साल थी। असहयोग का आन्दोलन जब चला, तो स्कूल के विद्यार्थियों ने भी एक सभा की। बड़े-बड़े लड़कों की एक समिति पिकेटिङ्ग की योजना को कार्यान्वित करने के लिये बनाई गई। उस समिति में मँझले भैया भी चुन लिये गये। समिति के सदस्य पिकेटिंग करने के लिये स्कूलों के विद्यार्थियों की सूची बनाने लगे। छोटे भैया भी इस दल में शामिल होना चाहता था, किन्तु मँझले भैया ने उसे रोक दिया। पढ़ने लिखने में वह जरूर मँझले भैया से तेज था, किन्तु जहाँ तक समझ और दुनियादारी का सम्बन्ध था, मँझले भैया

उससे कहीं आगे थे। उत्साही विद्यार्थियों ने नाम लिखाने में खूब जोश दिखाया। सूची तैयार हो जाने पर दस-दस विद्यार्थियों का जत्था एक एक समिति के सदस्य के साथ पिकेटिंग करने के लिये बना दिया गया। चूँकि इस काम में मँझले भैया ने सबसे अधिक उत्साह और तत्परता दिखाई थी, इसलिये यही तै हुआ कि पिकेटिंग करने के लिये उन्हीं का जत्था सबसे पहले जायगा।

दूसरे दिन नारे लगाते हुये सैकड़ों विद्यार्थियों से घिरे हुए, फूलों की मालाओं से लदे, अपने जत्थे के आगे-आगे शहर की विदेशी कपडे बेचने वाली दुकानों की ओर पिकेटिंग करने मँझले भैया चले, तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। नायक बनने से भी अधिक खुशी उन्हें इस बात की थी, कि आज से उन्हें उस पढाई-लिखाई से सदा के लिये मुक्ति मिल जायगी जो उनके लिये बवाले-जान बन गई थी। स्कूल के हेडमास्टर का हुक्मनामा उन्हें उस वक्त बार-बार याद आ रहा था, कि जो भी विद्यार्थी पिकेटिंग में शामिल होगा, वह स्कूल से निकाल दिया जायगा, और उसका दाखिला फिर बावनों जिलों में कहीं भी न हो सकेगा। किसी ओर से उन्हें शका थी, तो वह पिता जी और बड़े भैया की ओर से थी। वे जरूर गुस्सा होंगे उन पर। उनके गुस्से का झेल लेना उन्हें उस वक्त कहीं आसान मालूम हुआ। सदा की एक हीन भावना के अपमान के आगे थोडे दिन के गुस्से की परवाह करने की मन स्थिति में उस समय वे थे ही कहाँ?

दुकान पर जत्था पहुँचने के पहले ही वहाँ पुलीस की लारी पहुँच गई थी। सामने पुलीसमैनों को देख कर, एक बार उनका कलेजा धडक गया, पर अब मौका बगलें झाँकने का न

था। सैकड़ों साथियों के बीच किसी तरह की कमजोरी या बुज़-दिली दिखाना उनकी नजर से सदा के लिये अपने को गिरा देना था। मँझले भैया ने दूने जोश से नारा दिया। मजमा भड़क उठा। पुलीसमैनों की आँखों की पुतलियाँ काँपीं। जत्था दुकान के सामने जा डटा। नारे लगने लगे। मँझले भैया की दशा उस समय कुछ अजीब हो गई थी। बस, यन्त्र की तरह वह डटे हुये नारे लगा रहे थे। उन्हें आँखें खोले हुए रहने पर भी जैसे कुछ दिखाई न दे रहा था स्वस्थ रहते भी जैसे उनका मस्तिष्क, उनका हृदय अपना कार्य न कर रहा था। कैसे क्या हो रहा था, इसका उन्हें कुछ भी ज्ञान न था।

उन्हें नहीं मालूम कि किस तरह पुलीस ने उन्हें जत्थे के साथियों के साथ लारी में बैठाया, और किस तरह वे हवालात की काली कोठरी में ले जाकर बन्द कर दिये गये। किशोरावस्था के अनुभवहीन हृदय और अल्पज्ञानी मस्तिष्क पर वह अन-जानी महत्वपूर्ण, बड़ी घटना कुछ इस तरह छा गई थी, कि कि उसके भार के नीचे दब कर उनकी सारी चेतना ही लुप्त-सी हो गई थी।

उन्हें होश उस समय हुआ, जब पुलीस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने आकर उन्हें और उनके साथियों को समझाना शुरू किया। पढ़ाई रुक जाने से सारा जीवन नष्ट हो जायगा। उनका काम अभी माँ बाप के आज्ञानुसार पढ़ना-लिखना है। राजनीतिक कार्यों में भाग लेना बड़े लोगों का काम है। लड़कों को इस पचड़े में पड़कर अपना भविष्य बरबाद नहीं करना चाहिये। सजायें, जेल जीवन की यातनायें उनके मान की नहीं हैं। गुम-राह होकर किसी के बहकावे में न पड़ना चाहिये। उन्हें माफी माँग कर अपनी भूल को सुधार लेना चाहिये। अभी कुछ नहीं

बिगड़ा है। फिर उनके हाथ से यह मामला निकल जायगा, तो कुछ भी न हो सकेगा। फिर कौन जाने, उनकी इस भूल के कारण उनके घरवालों को भी किन-किन मुसीबतों का सामना करना पड़े।

कुछ डर, कुछ बुजदिली, कुछ जेल-यातना की आशङ्का, कुछ माँ-बाप के बिगड़ने की बात, कुछ अज्ञानता का भ्रम, आदि भावनाओं ने मिल कर कुछ भोले-भाले किशोरों को माफी माँगने के लिये विवश कर दिया। मान-अपमान की भावना का विचार उन्हें अभी क्या था? जिम्मेदारी, इज्जत, स्वाभिमान क्या होते हैं, उन्हें क्या मालूम? उनके इस कार्य से आन्दोलन पर क्या असर पड़ेगा, इसका उन्हें क्या ज्ञान था? बचपन के जोश में आ, वे अनजाने ही जिस महत्वपूर्ण कार्य के लिये चल पड़े थे, जोश ठण्डा हो जाने पर उस कार्य का अर्थ उनके लेखे रह ही क्या गया था?

उनमें कुछ स्वभावतः ऐसे भी थे, जो जिद्दी थे, स्वाभिमानी थे। उन्होंने एक बार जो न किया तो फिर सुपरिण्टेण्डेण्ट की चिकनी चुपड़ी बातों, धमकियों, कोड़ों की फटकारों और दूसरी यातनाओं से भी अपना निश्चय न बदला। उन्होंने ऐसा अपना कर्त्तव्य सोच कर न किया। कर्त्तव्य-ज्ञान अभी उन्हें था कहाँ? देश, देश-प्रेम, स्वतन्त्रता की गूढ़ बातें उनकी समझ के बाहर की बातें थीं। ऐसा वे अपने स्वभाव के कारण ही कर गये। उन्हीं में मँझले भैया भी थे। स्वभाव के साथ ही उनके अन्दर पढ़ाई छोड़ने की बात भी काम कर रही थी। इस हाथ आये सुअवसर को अब वे किसी भी हालत में छोड़ ही कैसे सकते थे?

माफी माँगने वाले छोड़ दिये गये। बाकी जेल की हवालात

में मुकदमे के लिये भेज दिये गये। छोटे भैया ने जब यह सुना, तो वह रो पड़ा। उसे क्या मालूम था, कि भैया सचमुच जेल भेज दिये जायगे? बोर्डिङ्ग के कमरे मे अब वह अकेला रह गया। सूनापन उसे खाये जा रहा था।

(२)

नियमानुसार हेडमास्टर ने मॅझले भैया के पिता को उनके पिकेटिङ्ग कर, कैद हो जाने की सूचना दी। सब ने सिर पीट लिया। उन्हें क्या मालूम था, कि मॅझले भैया बिना कुछ पूछे ताछे ऐसा कर बैठेगे? माँ को किसी तरह शान्त कर, बड़े भैया और पिता तुरन्त जिले को चल पड़े, जहाँ के हाई स्कूल में उनके लड़के पढते थे। छोटे भैया उन्हें देख कर और भी बिलख बिलख कर रो पड़ा। उसे किसी तरह समझा बुझा कर, उसे साथ ले, वे हेडमास्टर से मिले तो उनने बताया, कि माफी माँग लेने के सिवा कोई चारा नहीं। लड़का अभी नाबालिग है। उसकी ओर से पिता भी माफी माँग ले, तो काम चल जायगा। वे तो माफी माँगने के नहीं। सुपरिण्टेण्डेण्ट सब-कुछ करके हार मान गया।

हेडमास्टर की राय और सहायता से माफी माँगने यह कार्य कुछ इस तरह रहस्यमय ढङ्ग से किया गया, कि दूसरों की तो बात ही क्या, स्वयं मॅझले भैया को मालूम न हुआ, कि आखिर वे क्यों एक-ब-एक बिना किसी कारण के छोड़ दिये गये? जेल के फाटक पर विद्यार्थियों की भीड़ माफी माँगने की बात का ज्ञान न होने के कारण उनका स्वागत करने के लिये खड़ी थी। बाहर निकलते ही, उनका गला फूलों के हारों से भर गया। नारों के बीच गर्व और हर्ष की जो एक लहर उनकी नस-नस मे दौड़ गई, वह उनके

जीवन में एक ऐसी अपूर्व अभूतपूर्व थी, कि उनकी आत्मा उल्लास के नशे में झूम-सी उठी।

सहसा छोटे भैया एक ओर से आ, उनके गले से लिपट गया। भरी-भरी आँखें उनकी ओर उठाये, वह बार-बार कहे जा रहा था—"भैया, अब तो जेल न जाओगे न? देखो, तुम्हारे बिना मुझे कुछ भी अच्छा न लगता था। मैं रात-दिन तुमसे जुदा होकर रोता रहा हूँ! भैया, बोलो, बोलो, अब तो जेल न जाओगे न?"

जोशीले विद्यार्थियों की आँखें उसकी बातें सुन नफरत से भर गई। मॅझले भैया को जो अभी-अभी एक अभूतपूर्व उल्लास एवं गर्व के नशे की अनुभूति हुई थी, वह टूटती-सी लगी। मन ही मन छोटे भैया की नादानी पर वह झुँझला उठे पर ऊपर से कहा—"भैया, इतने नादान न बनो! अपने इन साथियों के सामने मेरे उठे हुए सिर को यों न झुकाओ! इनसे जो आज मुझे प्रतिष्ठा मिली है, उस पर तुम्हें भी गर्व होना चाहिये! मैं आज ही फिर एक जत्थे का नेतृत्व करूँगा! और पिकेटिंग कर फिर " सहसा उनकी नजर जो एक ओर मुड़ी, तो देखा, कि उनके पिता और बड़े भैया खड़े-खड़े उनकी ओर क्षोभ-भरी आँखों से देख रहे हैं। अब तक मसलहतन वे एक ओर छिपे खड़े थे। फिर जो उन्होंने उन्हें बहकते देखा, तो वहीं उन्हें टोक देना उचित समझ, वे उनके पास आ खड़े हुए थे। पिता ने शासन-भरे स्वर में कहा—"मॅझले भैया, चलो, मेरे साथ चलो!"

उस समय पता नहीं मॅझले भैया की क्या हालत हो गई, कि सन्नाटे में आये से वे यन्त्र की तरह पिता के पीछे-पीछे कदम उठा चल पड़े।

विद्यार्थियों की भीड़ में बहादुर बेटे के कायर पिता की यह हरकत देख, क्षोभ और घृणा की एक लहर सी दौड़ गई। दबी दबी जबान से ही वे पिता को बुरा-भला कहते वहाँ से हट गये।

हेडमास्टर, पिता, बड़े भैया उन्हें समझाते-समझाते हार गये, पर मँझले भैया पर अब जो एक नशा चढ़ गया था, वह उतरता नजर न आया। वे हर बार पिता और बड़े भैया से यही कहते—"मैं आप लोगों की सब बात मानने के लिये तैयार हूँ, किन्तु यह बात मुझसे न कहिये।"

मँझले भैया सचमुच अब देश प्रेम के रंग में रंग गये थे। जिस भावना से प्रेरित होकर, उन्होंने यह कदम उठाया था, अब उसका उन्हें ख्याल भी न था। अब तो सचमुच उन्हें लग रहा था, कि जो काम उन्होंने किया था, वह इतना महान्, इतना पवित्र, इतना प्रशंसनीय और इतना महत्वपूर्ण है, कि उसके लिये पढ़ाई-लिखाई क्या, जीवन का भविष्य क्या, ऐसे-ऐसे अनेक जीवन भी न्यौछावर कर दिये जाँय, तो थोड़ा है। जेल की हवालात में जिले के बड़े-बड़े नेताओं ने जो उनके साहस, समझ और दृढ़ता की प्रशंसा कर, उनकी पीठ ठोंक कर शाबाशी दी थी, उसकी अनुभूति अभी क्या जीवन भर उन्हें प्रेरणा देती रहेगी। वहीं उन्हीं की जबानी देश, गुलामी, स्वतन्त्रता और आन्दोलन के विषय में कुछ बातें भी मालूम हुई थीं। उस समय उनके मस्तिष्क की दशा कुछ ऐसी थी, कि वे अधूरी बातें भी जैसे पूर्ण बन उनकी आत्मा में प्रकाश की अनन्त किरणें बन भर गई थीं। एक बार उस आलोक में खुली हुई आँखों को फिर बन्द करके अँधेरे पथ के यात्री बनना अब वे कैसे पसन्द कर सकते थे? जेल की यातनाओं

का भय भी अब उनके हृदय से उसी तरह हट गया था, जैसे चाबुक देख कर घोड़े के अन्दर समाया भय एक बार चाबुक पड़ जाने पर हट जाता है।

विवश हो कर, पिता ने यही उचित समझा, कि उन्हें वे साथ ही घर लिवाते जायँ। अभी नया नया जोश है। थोड़े दिन मे आप ही ठंडा हो जायगा। माँ समझाये, तो शायद मान भी जायँ। मँझले भैया इस मौके का छोड़ कर, घर नहीं जाना चाहते थे। पर पिता ने जब माँ का हवाला दे कहा, कि जब से उन्होंने उनके जेल जाने की बात सुनी है, उन का दाना-पानी तक छूट गया है, और जब तक वह उन्हें देख न लेंगी, उन्हें सब्र न होगा, तो विवश हो, वह घर जाने को तैयार हो गये।

सचमुच माँ का हाल बेहाल था। जब से उन्होंने मँझले भैया के जेल जाने की बात सुनी थी, उनका कलेजा फट रहा था। जो ममता, स्नेह, और वात्सल्य तीनों पुत्रों में बँटा हुआ था, वह अब जैसे एक स्रोत मे सिमट, मँझले भैया पर ही उमड़ रहा था। बड़े भैया और छोटे भैया का जैसे उन्हें उस वक्त कोई ख्याल ही न था। यह बात कुछ उसी तरह की थी जैसे आदमी का कोई अंग विकारग्रस्त हो जाता है, तो उसका सारा ध्यान और अंगो से हट, एकाग्र हो, उसी अंग पर सिमट जाता है।

मँझले भैया को सही-सलामत आँखों के सामने देख, उनकी सारी चिन्ता, सारा दुख एक क्षण में दूर हो गया। उस दिन उन्होंने उन्हें ऐसे खिलाया पिलाया, उन पर ऐसे स्नेह की वर्षा की, जैसे कोई माँ खोये पुत्र को पाकर उसके साथ करती है।

जैसा पिता का ख्याल था, कि थोड़े दिनो मे मँझले भैया

का पागलपन दूर हो जायगा, वैसा न हुआ। सब समझा कर हार गये, पर वे टस-से मस न हुए। अब उनका दिमाग जैसे खुल गया था, जिह्वा पर जैसे सरस्वती आ बसी थीं। लोगों की बातों को वे ऐसे काट देते थे, कि सुन कर आश्चर्य होता था कि क्या यह वही बोंदे मॅझले भैया बोल रहे हैं। माँ ने भी समझाया—'बेटा, ये पढ़ने लिखने के दिन हैं। पढ़ लिख लो। फिर जो जी में आये करना। काम करने के लिये तो सारी जिन्दगी पड़ी है। वक्त पर सब-कुछ अच्छा लगता है। लड़कों को कभी भी ऐसे कामों में न पड़ना चाहिये।"

उन्होंने उत्तर दिया—"माँ, मैं तुम्हें किस तरह समझाऊँ कि यह काम सिर्फ बड़े लोगों के ही करने से नहीं होने का? इस काम के लिये देश के बूढ़े, जवान, बच्चे सब की जरूरत है। जब तक सब मिल कर कोशिश नहीं करते, तब तक कोई गुलाम देश आजाद नहीं होता। आजादी की लड़ाई में हिस्सा लेना देश के हर व्यक्ति का कर्त्तव्य है। कोई पढ़ाई का ख्याल कर इससे अलग रहे, कोई अपने काम का ख्याल कर इसमें हिस्सा न ले, कोई और किसी कारण से इसमें हाथ न बँटा सके, तो आखिर देश का यह बड़ा काम कौन करेगा? देश की आजादी के लिये देश के हर व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत स्वार्थ छोड़, संगठित हो, दुश्मनों से मोर्चा लेना ही पड़ेगा। यह महत्वपूर्ण कार्य किसी व्यक्तिगत कारण से स्थगित नहीं किया जा सकता।"

अपढ़ माँ ने बेटे को इस बार एक अपरिचित भाषा में बात करते पाया। उनकी समझ में ही जब कुछ न आया, तो क्या जवाब देती? मॅझले भैया ने ही फिर कहा—"माँ, तुम किसी बात की चिन्ता न करो। हम तीन भाई हैं। समझ लो, कि

तुमने एक बेटे को देश पर कुरबान कर दिया। देश पर कुरबान होने वाले किसी-न-किसी माँ के बेटे ही तो होंगे। तुम भी उन्हीं माँओं में से अपने का भी एक समझो, माँ!" कह कर, आँखों में एक ऐसी पवित्र साध का भाव ला, उन्होंने माँ की आँखों में देखा, कि भोली माँ की ममतामयी आत्मा बेटे की उस जीवन की एक साध पर स्वयं को भी कुरबान कर देने को मचल पड़ी। उन्होंने उन्हें अपनी गोद में खींच लिया। फिर स्नेह-भरी उँगलियाँ उनके माथे पर फेरती, भरी आँखों में हृदय का सारा रस ला बोलीं—"बेटा, मैं माँ हूँ। माँ बेटे की हर साध पूरी कर, उसे खुश देखने के सिवा दुनिया में और कुछ नहीं चाहती। अगर तुम्हारी यही साध है, तो " कहते-कहते उनका हृदय उमड आया। आँखें बरस पडीं। भींगे हुए काँपते होंठों पर किसी तरह बस पा, उन्होंने कहा—"मैं अपना कलेजा पत्थर का बना लूँगी, बेटा! भगवान तेरी साध पूरी करे!" कह कर, फफक-फफक कर वह एक बच्चे की तरह रो पडीं।

मँझले भैया ही जैसे उस समय उनकी माँ बन, उनके आँसुओं को पोंछने लगे। उस वक्त उन्हें लग रहा था, जैसे दुनिया में किसी की माँ भी उनकी तरह अच्छी न होगी। उनका शीश उस समय उनके पुनीत चरणों में जिस तरह एक भावना को लिये झुक रहा था, वैसा पहले कभी न हुआ था।

(३)

मँझले भैया ने हर राष्ट्रीय आन्दोलन में खुल कर हिस्सा लिया। कभी छै महीने, कभी दो साल, कभी पाँच साल तक की उन्होंने सजायें भोगी। जेल की जो-जो यातनायें उन्होंने उठाई, पुलीस की जिन-जिन सख्तियों से वे गुजरे, सरकार के जिन-जिन काले जुल्मों के वे शिकार हुए, उनका कोई हिसाब

नहीं। जुर्माने देते-देते पिता तबाह हो गये, पर मुँह से उफ तक न किया। बड़े भैया ने जैसे इसे भी और कामों की तरह एक काम ही समझ लिया। पहले ही की तरह वे अब भी अपना व्यापार पूरे जोश मे चलाते रहे। कभी भी मँझले भैया के प्रति एक शब्द शिकायत का उनके मुंह से न निकला। छोटे भैया बी० ए० कर, साहित्यिक बन बैठा। लिखते लिखाते किसी पत्र का सम्पादक बन गया। उसकी अलग एक दुनिया बस गई, जिसमे माता-पिता, भाइयों और भौजियो के लिये स्नेह, सहानुभूति के सिवा किसी प्रकार के आर्थिक सम्बन्ध का प्रश्न ही न उठ सका, क्योंकि उसका पेट जब देखो, खाली ही रहता। बल्कि कभी कभी माँ बाप को ही उसकी सहायता करनी पड़ती। किन्तु उसके हृदय में मँझले भैया के लिये बहुत ही ऊँचा स्थान था। उन्हीं के ख्याल से वह किसी सरकारी नौकरी मे न गया, वरना उसके जैसे व्यक्तित्व के, तेज, योग्य युवक के लिये अच्छी-से-अच्छी नौकरी, बिना किसी शिफारिश के भी, मिल जाना कोई असम्भव बात न थी। और माँ? माँ ने तो सचमुच अपना कलेजा पत्थर का बना लिया। अपने तीन पुत्रों को लेकर, उन्होंने अपने भावी जीवन का जो सुखद कल्पनायें की थीं, वे बेटों के होश सँभालते ही टूट गईं। छोटे भैया, जो 'पेट-पोंछुआ' होने के नाते उनकी आँखों का तारा था, अब उनसे दूर ही-दूर रहने लगा। कभी-कभी छुट्टियो मे दो-चार रोज के लिये एक मेहमान की तरह घर पर ठहर कर चला जाता। शादी की बात उठती, तो उन अपढ़ों की समझ मे न आने वाली बाते करता। आप ही उसने समझ लिया था, कि उसका जीवन साधारण सासारिक पचड़ों में खपा देने के लिये नहीं है। वह सदा साहित्य और कला के उच्च

आकाश में विचरता। सर्वथा बौद्धिक जीवन व्यतीत करने के स्वप्न देखता। भला वैसे व्यक्ति के लिये गाँव के वातावरण और अपढ़ों से क्या दिलचस्पी होती ? मँझले भैया को अपनी राजनीति से ही फुरसत न था। आन्दोलन हो या न हो, उनका एक पैर हमेशा जेल में ही रहता। अब वह स्थानीय नेता बन चुके थे। उनकी गिरफ्तारी के वारन्ट की खबर पा जवार के अनगिनत लोग घर के सामने जमा हो जाते। गिरफ्तार होने के पहले वे भीड़ के सामने खड़े हो, मस्तक ऊँचा कर, गर्व से छाती फुला, आँखों में बलिदानी उमंग ला, जोश-भरी आवाज में भाषण देते। उनका गला फूलों के हारों से भर जाता। उनकी जय-जयकार से गाँव गूँज उठता। तब माँ आँखों में आँसू और काँपते होंठों पर बरबस मुस्कान ला, आरती के दीप सजा, उनकी बलैया ले, उनके उन्नत, प्रकाशमान ललाट पर काँपते अँगूठे से तिलक लगाती। भीड़ माँ के पैर छूती, उनके साहस और त्याग की प्रशंसा करती। और मँझले भैया पिता, बड़े भैया और भाभी के पैर छू, उन्हें रुला कर विदा हो जाते। उस समय किवाड़ की आड़ से बरसती आँखों और फूटती रुलाई से फड़कते होंठों पर आँचल का कोना दबाये कोई उनकी ओर देख रहा है, शायद इसका ख्याल उनको न होता, या होता भी तो शायद उसे मर्द की सब से बड़ी दुर्बलता समझ, उसकी ओर देखने का वह साहस ही न करते। मूक पत्नी के प्रति उनका यह कितना बड़ा अत्याचार होता, इसे वह क्या, उनके जैसा कोई भी कब समझने का प्रयत्न करता है ? माना, वह गँवार है, राजनीति, आन्दोलन, स्वतन्त्रता, राष्ट्र, त्याग-बलिदान और ऐसी ही कितनी बातों के महत्व को वह नहीं समझती। पर इतना तो वह जानती है, कि वह किसी की पत्नी है, वह किसी की चरण-सेविका है, वह

किसी की प्रेम-पुजारिन है। वह और कुछ तो नहीं चाहती। वह पत्नी के नाते पति के कुछ मधुर बोल ही तो चाहती है, चरण-सेविका होने के नाते चरणों के स्पर्श का अधिकार ही तो चाहती है, प्रेम पुजारिन होने के नाते प्यार दुलार की चन्द आस ही तो चाहती है। पर उसे इतना भी देते पुरुष क्यों घबराता है, क्यों डरता है? अपनी दुर्बलता का सामना करने से भयभीत होने वाला पुरुष क्या यह जानने का कभी प्रयत्न करता है, कि ऐसा कर, वह एक अपढ़, गँवार, भोली भाली स्त्री को किस व्यथा, दुख यातना और उपेक्षा की अग्नि में झुलसने के लिये छोड़ जाता है?

उनके चले जाने के बाद माँ बैठी उनकी याद में बिसूरती रहतीं, उनके लिये अपने भगवान से प्रार्थना करती रहतीं, और पति-वियोग से तड़पती बहू को दिलासा दिया करतीं। उनके लिये सान्त्वना और सुख का कोई स्थल था, तो वह बड़े भैया और बड़ी बहू को लेकर था। मँझले भैया के कारण जो क्षति पहुँचता, उसे पूरा करना ही जैसे बड़े भैया काम रह गया था। उन्हें अपने काम के सिवा दीन-दुनिया की कोई खबर न रहती। यदि वह ऐसा न करते, तो कभी का उनका कुल भिखारियों की पंगत में जा बैठने को विवश हो जाता। जालिम सरकार की शनि दृष्टि जिस देश-प्रेमी कुल पर पड़ जाती, उसका पनपना कितना कठिन था, इसे कोई भी आसानी से समझ सकता है। जुर्माना के अलावा उन्हें मँझले भैया के मुकदमे में भी काफी खर्च करना पड़ता। उन्हें छुड़ा लेने की आशा में वे हर बार हाईकोर्ट तक की खाक छानते। पर कोर्ट कोई हो, सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे तो ठहरे। जहाँ देश प्रेम ही जुर्म हो, वहाँ आदमी का कोई भी कार्य कितनी आसानी से जुर्म साबित किया जा सकता है, यह उस वक्त के मुकदमों के कागजात देखने से

कोई भी सहज ही समझ सकता है।

इतना सब तो था, पर साथ ही यह नहीं था कि कुल का कोई भी सदस्य मँझले भैया के इस कार्य से किसी प्रकार भी असन्तुष्ट या क्षुब्ध हो। बल्कि इसके उल्टे उन्हें एक तरह से एक दबे दबे गर्व का ही अनुभव हो रहा था। उनके कुल की प्रतिष्ठा एक उन्हीं के कारण जितनी बढ़ गई थी, उससे वे अनजान न थे। और सच तो यह है, कि एक तरह से सब के-सब जैसे अपना अपना कार्य किये जाना ही अपना कर्त्तव्य समझते थे। किसी का किसी से कोई विरोध न था। सब जैसे एक ही चक्र के हिस्से हों, जिनके मिलने से चक्र में घूमने की योग्यता आती है, और वह कभी आगे, कभी पीछे घूमता जाता है। उसका कौन हिस्सा अधिक उपयोगी है, कौन कम, यह कहा ही कैसे जा सकता है?

व्यक्तिगत-सत्याग्रह-आन्दोलन में भी मँझले भैया अग्रगणी रहे। अपने जवार से कैद होने वालों में वह पहले व्यक्ति थे। इस सत्याग्रह में चुने हुए लोगों को ही भाग लेने की आज्ञा मिली थी। इनमें सजा तो दो ही चार साल के लिये होती थी, किन्तु जुर्माने की रकमें बहुत ज्यादा होती थीं। शायद सरकार ने यह समझा हो, कि चुने हुए लोग वही हैं, जो बड़े और धनी मानी हैं। उनसे जितना वसूल किया जा सके, कर लेना चाहिये। लड़ाई के लिये सरकार को रुपयों की बहुत जरूरत भी थी। इस मौके से वह फायदा न उठाये, यह कैसे सम्भव था? मँझले भैया को दो साल की सजा हुई, और पाँच हजार रुपया उन पर जुर्माने का कर दिया गया। सजा की तो कोई बात न थी। वह उससे भी बड़ी-बड़ी सजायें काट चुके थे, पर जुर्माने की रकम इतनी अधिक थी, कि उनकी आँखों के सामने घर का उजड़ा रूप घूम गया। पिता और बड़े भैया का तो जैसे

अपनी कमर ही टूटती लगी। जुर्माने के बदले पाँच साल की और सजा भुगतनी थी। राब सोच-विचार कर उन्होंने यही निश्चय किया, कि वह सात साल की सजा भुगत, घर को बरबाद होने रा बचा लेंगे। उन्होंने ऐसी सूचना कचहरी को दे भी दी। पर अभी उस पर कुछ कार्वाई भी न हुई थी, कि जुर्माने की रकम वसूल करने के लिये कुर्क अमीन घर पर आ धमका। यह बिलकुल गैरकानूनी बात थी, क्योंकि अभी जुर्माने जमा करने का वक्त भी पूरा न हुआ था। पर सरकार ने जुर्माना किसी तरह वसूल करने के लिये ही लगाया था। क्या कानूनी है, क्या गैरकानूनी, इसकी परवाह करने की फुरसत अफसरों को नहीं थी। ऊपर से ताकीद थी, कि जुर्माने का रकम जल्द से-जल्द सख्ती के साथ वसूल कर ली जाय। नतीजा यह हुआ, कि घर पर बोली बोल दी गई। इतनी बडी रकम पिता-जैसे छोटे रोजगारी व्यक्ति के लिये देना कैसे सम्भव था? जब पूरी रकम घर के नीलाम से वसूल न हो सकी, तो बाजार के गोदाम में रखे चावल, दाल और चीनी के सैकडों बोरे पुलीस बिना किसी हिसाब किताब के उठा ले गई। लोगों की अजीब विवशता थी, कि पुलिस के इस अवैधानिक कार्य और जुल्म की सुनवाई किसी कानून की कचहरी में न हो सकती थी। राह के भिखारी होने में अब कसर ही क्या रह गई थी? पर बडे भैया की अक्ल इस वक्त भी काम कर गई। उन्होंने अपने एक सम्बन्धी से ही घर पर बोली बोलवाई। मॅझले भैया जैसे राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता से घर का वास्ता था, इसलिये किसी ने चढ़ा-ऊपरी करने का घृणित कार्य न किया। नतीजा यह हुआ कि बहुत कम दाम में ही डाक खतम करने पर कुर्क अमीन को मजबूर होना पडा। ऐसे मौके पर ये अपने खास आदमी बोली बढ़ाने के लिये अफसरों की राय से ले जाते थे, किन्तु उस मौके

पर, शायद ईश्वर को ही वैसा मजूर था, कि ये कोई अपना आदमी न ले जा सके थे। यों घर तो बच गया, पर सारा रोजगार चौपट हो गया। फिर भी पिता या बड़े भैया के माथे पर शिकन तक न पडी, मुँह से मॅझले भैया के प्रति शिकायत का एक शब्द भी न निकला। भगवान पर भरोसा और अपने बाजुओ की शक्ति मे उन्हें विश्वास था। बची-खुची पूजी से उन्होंने फिर अपना रोजगार शुरू कर दिया। मॅझले भैया ने जेल मे ये बाते सुनी, तो सरकार के प्रति उनका क्षोभ और भी बढ गया। उनके इरादे और भी पक्के हो गये। इस जालिम सरकार को मिटाये बिना चैन न लेने की अपनी प्रतिज्ञा को उन्होंने फिर दुहराया। ओह, गुलामी कितना बडा अभिशाप है ?

(४)

घर की लडखडाई हालत अभी सॅभल भी न पाई थी, कि अचानक एक ऐसा धक्का लगा, कि सब कुछ स्वाहा हो कर रह गया। अगस्त, १९४२ का जमाना आया। बडे नेताओं की अनुपस्थिति मे जनता ने स्थिति की बागडोर अपने हाथो मे ले ली। जमाने की अपमानित, मजलूम, सताई हुई, कुचली हुई, नगी भूखी जनता आज पहिली बार, किसी का भी अनुशासन न होने के कारण आप ही दासता की जजीरें तोड, मस्त हो, हुँकारती हुई, दुश्मनो के सिर तोडने को वैसे ही निकल पडी, जैसे मौका पा पिजडे का शेर हुँकारता हुआ निकल पडता है। चौकन्नी सरकार भी अब की धोखा खा गई। उसने सोचा था, कि नेताओं की अनुपस्थिति मे जनता अपग हो चुपचाप पडी रहेगी, पर जनता अब पहले की जनता न रह गई थी। लगातार कितने ही आन्दोलनो मे हिस्सा लेते-लेते, वह समझ गई थी, कि उसे क्या करना है। नेताओ की उपस्थिति मे जिसके होने

की सभावना न थी, वही उनकी अनुपस्थिति मे होकर रही। अब की पहली बार जनता को खुल खेलने का मौका मिला। और वह खूब खुल खेली। दिल का कोई भी अरमान निकलने से न रह जाय, अब की जनता ने सोच रखा था।

जनता की जितनी बुद्धि थी, उनके पास जो भी साधन थे, उनका खुलकर उसने उपयोग किया। यह बुद्धि, यह साधन सरकार की बुद्धि और साधन के मुकाबिले मे कुछ भी न थे, किन्तु चोट ऐसे कुमौके और ऐसे कुघाते लगी, कि दिल्ली की सरकार हो क्या, उसके लन्दन मे बैठे आका भी तिलमिला गये।

एक ही वक्त बिना किसी पूर्व सूचना या सगठन के देश के कोने कोने मे विद्रोह का जो विस्फोट हुआ, एक ही तरह की सरकार को नष्ट कर देने वाली जो विध्वसकारी घटनायें घटी, एक ही उद्देश्य के लिये, एक ही सदेश से अनुप्राणित हो, एक ही तरह के कार्य क्रम जनता ने सामने रखे, जो प्रलयकारी कदम एक ही साथ उठाया, वह बरसो के सगठन, प्रयत्न और ट्रेनिग के बाद भी सम्भव होता, ऐसा कहना कठिन है। सच तो यह है, कि देश के गर्भ में जो क्रान्ति बरसो से अनजाने ही ज्वालामुखी की तरह एक-ब-एक फट पड़ने को छटपटा रही थी, वही अवसर पा सहसा फूट पड़ी। जनता ने उसका स्वागत किया। सरकार की नींवे हिल उठीं।

मॅझले भैया ने अपने जवार की जनता का नेतृत्व किया। अपने तपे हुये, वीर, त्यागी, प्रिय नेता की एक पुकार पर लोग प्राण देने और लेने को उनके सामने इकट्ठे हो गये। नेताओं की गिरफ्तारी का समाचार सुन मॅझले भैया इतने क्षुब्ध और जोश में थे, कि उनका होश ठिकाने न था। उनके हाथ पैर क्रोध के मारे बेकाबू हो कॉप रहे थे। छाती अन्तर मे जैसे एक विस्फोट का अनुभव कर, धौकनी की तरह उठ-बैठ रही थी। चेहरा

तमतमा कर सुर्ख हो गया था। आँखें जैसे लपटें उगल रही थीं। उन्होंने उसी हालत में कुचले हुए सर्प की तरह फुफकार कर जनता से अनियन्त्रित आवाज और भाषा में थोड़े में ही सरकार की उस चुनौती के बारे में कहा। फिर इस चुनौती को स्वीकार करने का अपनी प्यारी संस्था कांग्रेस के नाम पर, अपने प्यारे नेता गाँधी और जवाहर के नाम पर, अपनी प्यारी जन्मभूमि भारत माता के नाम पर, अपने प्यारे उद्देश्य स्वराज्य के नाम पर, अपनी प्यारी माँओं और बहनों की इज्जत के नाम पर, अपनी प्यारी जनता की भूख के नाम पर, उन्होंने जनता को ललकारा। जनता जोश में पागल हो भड़क उठी। हजारों मुट्ठियाँ हवा में लहरा उठीं। इन्कलाब के नारों से वातावरण काँप उठा। जनता के जोश के साथ मँझले भैया गम्भीर थे। उन्होंने एक क्षण भी बरबाद न कर, चीख कर कहा—"हमारा पहला निशाना सरकारी जुल्मों का अड्डा थाना होगा।" कह कर, उन्होंने नारा लगाया, और क्रुद्ध शेर की तरह गुर्राते हुए बौखलाई जनता को पीछे लिए थाना की ओर चल पड़े।

जनता और पुलिस का जितना सीधा और सर्वकालिक सम्बन्ध है, उतना सरकारी किसी मुहकमे के कर्मचारियों का नहीं। पुलिस जनता के साथ आये दिन जो अत्याचार किया करती है, वह सरकारी किसी विभाग के आदमी के लिये सम्भव नहीं। यही कारण है, कि जनता पुलिस के लिये दिल में खार खाये बैठी रहती है। मँझले भैया ने थाने को जो पहला निशाना बनाया, उसके पीछे वही मनोवृत्ति काम कर रही थी। एक जमाने के बाद पाँसा पलटा था। जनता भी आज खुल कर पुलिस से उनके अब तक किये गये कुल अत्याचारों का बदला रत्ती रत्ती चुका लेने के लिये उतावली हो रही थी।

दूर ही से क्षुब्ध सागर की तरह उमड़ती क्रुद्ध जनता की अपार भीड को देख, दारोगा, नायब, मुंशी और कान्स्टेबिलों के होश फाख्ता हो गये। नारों की गरज सुन, उन्हें समझते देर न लगी, कि मजमा इस तरह थाने की ओर क्यों बढता आ रहा है। थाने में एक दर्जन बन्दूकें और गिनती की कारतूस, और बिगडी हुई जनता की पिलती हुई यह भीड! मृत्यु उनकी आँखों के सामने, उनके सारे जुल्मों का भार सिर पर लिये, नाच उठी। नौकरी राजभक्ति, तरक्की, इनाम, सब एक ही साथ उनके दिमाग में चक्कर लगा गये। पर एक दर्जन बन्दूक और गिनती की कारतूसें, और बिगड़ी हुई जनता की यह पिलती हुई भीड! क्या किया जाय, क्या किया जाय? पर सोचने का वक्त ही कहाँ था? भीड पास, और पास आ गई। नारों की आवाजें तेज, और तेज होती जा रही थीं। जमीन जैसे धँसी जा रही थी। आसमान जैसे और ऊपर उड़ा जा रहा था। गले में जैसे फन्दे पड रहे हों। एक झटका लगेगा, फिर फिर

"भागो, भागो!" दारोगा चीख पड़ा।

किसी को किसी चीज का होश न रहा। जो जैसे था, वैसे ही भागा। बाल बच्चों तक की चिन्ता जिन्हें न रही, वे भगाऊ सर-सामान की फिक्र क्या करते? हाँ, दारोगा ने पिस्तौल और पुलीसों ने बन्दूकें ऐसे फेंक दीं, जैसे उनके हाथों में वे सर्प बन गई हों। उन्हें साथ लेकर भागना मानो जनता को मुकाबिले की चुनौती दे, और भड़का देना था।

जनता कोई अन्धी तो थी नहीं। उन्हें भागते जो देखा, तो थाने की चिन्ता छोड़ वह उन्हीं की ओर लपक पडी। उस थाने की दीवारों से नहीं, थाने वालों से बदला लेना था। अवसर खो देना वह किसी भी हालत में बरदाश्त न कर सकती थी।

दिल का बुखार निकाले बिना आज वह चैन लेने वाली न थी। मुट्ठी भर पुलिसमैनों का पकड़ लेना उनके लिये कोई मुश्किल बात न थी। उस वक्त तो व अनगिनत चींटियों को भी टप-टप बीन लेते।

सब के-सब पकड लिये गये। उस वक्त जनता के फौलादी पजो मे जकडे हुए उन गद्दारो की वही दशा थी, जो उस सर्प की होती है, जिसकी गर्दन मदारी की मुट्ठी मे जकड जाती है। सप तो फुफकारता है, क्रोध दिखाता है, पूँछ से मदारी के हाथ बाँध लेने की चेष्टा करता है, पर इनकी हालत तो मुर्दा-जैसी हो गई। उनके शरीर का खून ही जैसे सद पड गया हो, रोम रोम जैसे निष्प्राण हो गया हो। बस कहीं जीवन का चिन्ह था, तो केवल उनकी सफेद पडी आँखो की मृत्यु-भय से काँपती पुतलियो मे।

मझले भैया के आदेश की प्रतिष्ठा रखने के लिये जनता ने उनके प्राण तो नही लिय, उन नमकहराम बुजदिलो के प्राण लेना खुद अपने को ही शर्मिन्दा करना था, पर उनकी जो-जो दुर्गति की गई, उससे उनकी जो दशा देखने मे आई, वह कुछ वैसी ही थी, जैसे किसी चोर की रगे हाथो पकड जाने पर होता है। शर्म से गर्दन झुकाये, चारों ओर से जकडे चोर को कौन क्या सुना जाता है, कौन लाते जमा जाता है, कौन थप्पड लगा जाता है, कौन उसके मुँह पर थूक जाता है, इसका हिसाब कौन रखता है? जनता के बहुत से सदस्यों ने अपने पर किये गये जुल्मो का उनसे हिसाब माँगा, फिर पूछा कि, उनकी परिस्थिति मे व होते, तो क्या करते। पर पुलीसमैनों की तो जैसे जुबान ही कट गई थी। उन्हें कसम थी, कि उनके मुह से एक शब्द निकलता। मृत्यु की आशका उन्हें अब न थी, पर बिगडी जनता कब क्या कर बैठेगी, इसका

भय तो उन्हें था ही।

आखिर पकड़ कर वे थाने के सामने ला ये गये। मँझले भैया के आदेश पर रा बन्दूकें, कारतूस, वर्दियाँ, कागजात, बेड़ियाँ और सब सामान उन्होंने यन्त्र की तरह उनके सामने ला रख दिया। फिर उन्हीं के हाथों उन्होंने वर्दियों और कागजात में आग लगवाई। फिर एक-एक गाँधी टोपी उनके सिर पर रख, उन्हें भीड़ के सामने लाइन में खड़े हो जनता को सलामी देने की आज्ञा दी। पुलीसमैनों ने उसे भी किया। फिर उनके हाथों में तिरंगे थमा, उन्हें भीड़ के आगे आगे चलने का आदेश दिया गया। इतने में ही किसी ने याद दिलाई—"मँझले भैया, जनता के खून से रंगी हुई ये थाने की लाल लाल दीवारें क्या इसी तरह खड़ी रहेंगी ?"

मँझले भैया ने अपनी भूल सुधार ली। पुलीसमैनों से ही थाने में भी आग लगवा दी। हू हू कर जब लपटें उठी, तो उसकी ओर देख कर पुलीसमैनों की वही हालत हुई, जो उस बाज की होती है, जिसके सामने ही उसका पींजा जलता नजर आता है।

फिर आगे आगे नारे लगाते चले पुलीसमैन, और उनके पीछे पीछे चली जनता की भीड़। एक घन्टे के अन्दर ही डाक-बंगला पोस्ट आफिस तथा चौकी फूंक दी गई, और बाज गोदाम लूट लिया गया। सरकार के जितने चिह्न थे, उन्हें आग की लपटों ने अपने में आत्मसात कर लिया। सरकार के नाम पर एक कोना भी बोलने वाला बाकी न रहा।

दूसरे दिन जिला-कांग्रेस के सभापति का आज्ञा-पत्र आया कि जिले में अंग्रेजी हुकूमत खत्म हो गई। गाँव में पचायत कर सब इन्तजाम अपने हाथ में ले, सारी व्यवस्था को ठीक-ठीक चलाने का प्रयत्न शुरू किया जाय।

इस अप्रत्याशित विजय के उल्लास से जनता पागल-सी हो उठी। उसे सचमुच लगा, कि सदियों से उसके पैरों में जकड़ी हुई बेड़ियाँ टूट गई, गुलामी सदा के लिये खत्म हो गई। अब वह आजाद है, आजाद!

सचमुच पुलिस की ताकत और हुकूमत वहाँ खत्म हो गई थी। पुलीस के ऊपर उससे बढ़कर सरकार की एक और ताकत है। इसका ख्याल उस वक्त शायद विजय की खुशी में किसी को न रहा, या था भी, तो उनका ख्याल था, कि रेल, तार कट जाने और पुल तोड़ दिये जाने से उसका खतरा नहीं है। पर उन्हें क्या मालूम कि आसमान और हवा भी उनके दुश्मन हैं, जो उस ताकत को सहसा एक दिन उनके सिर पर ला पटकेंगे।

हुआ भी वैसा ही। अभी एक हफ्ता भी न बीता था, कि एक दिन आकाश हवाई-जहाजों की विकराल चीखों से गरज उठा। जमीन बमों के धड़ाकों से फट पड़ी। यह सेना का पेश-खेमा था। जनता को अब होश आया। पर पहले भी होश आता, तो वह क्या कर लेती? थाना और जाइन से छिनी हुई कुछ बन्दूकों और कारतूसों के सिवा उनका मुकाबिला करने का साधन ही उनके पास क्या था? चारों ओर एक आतंक छा गया। अब क्या हो, क्या हो?

दूसरे दिन ही नदी नाले पार करता, सेना की जीप गोलियाँ दागती, दनदनाती हुई पहुँच गई। सड़कों पर जो दिखाई दिये, गोली से उड़ा दिये गये। यों भी हवा में हजारों निशाने लगा, सेना ने शहर को दहला दिया। फिर टोलियों में बँट, व गाँवों की ओर जीपों में उसी तरह गोलियाँ दागते चल पड़े। पीछे आदमियों और जानवरों की छटपटाती लाशें और सड़क के दोनों ओर के गाँवों में जलते हुये अनगिनत घर और मुर्दे छोड़ती मृत्यु, आग, और चीख-पुकार का हाहाकार उत्पन्न

करती, जीपें बढ़ती गई, बढ़ती गई।

सेना की दृष्टि में वहाँ का हर आदमी बागी था। किसी के साथ कोई दूसरा व्यवहार करना उन्होंने सीखा न था। इसलिये क्या नेता, क्या जनता, जिसने भी जहाँ सेना की इस हरकत की खबर सुनी, वहीं से चम्पत हो गया। गाँव उजड़ गये। उजड़े हुए गाँवों के घरों को लूट कर उन्हें जला, आदमियों के बदले वहाँ छुटे हुए हाथी, घोड़ों गधों, बैलों, गायों, कुत्तों और बकरियों को ही गोली का निशाना बना, सेना को अपना क्रोध शान्त करना पड़ा।

थोड़े ही दिनों बाद फिर आन्दोलन के पहले का पुलीस-राज स्थापित हो गया। थानों पर विशेष रूप से सेना की टुकड़ियाँ बैठा दी गई।

मॅझले भैया भी फरार थे। उनके घर के लोग भी जो बना, लेकर कहीं छिप गये थे। उनके घर की जली अधजली दीवारें बता रही थीं, कि मालिकों की अनुपस्थिति में उस अनाथ पर क्या-क्या गुजरी है। जेवरों और नकद के सिवा वे कुछ भी बचा न पाये थे। बिस्तर तकिये तक का पता न था, फिर उनके मालगोदाम के चावल, दाल और चीनी के बोरों का क्या पूछना ?

धीरे-धीरे हालत बदलती गई। सरकारी अफसरों ने एलान किया, कि पुलीस शान्त रहने वाली जनता के साथ अत्याचार न करेगी। उसे पहले ही की तरह गाँवों को आबाद कर, पुलीस को उन सरगनों को पकड़ाने में मदद देनी चाहिये, जिनके कारण जनता को इतने दुख उठाने पड़े हैं। लोग अपने-अपने घरों को लौटने लगे। गाँवों में फिर जिन्दगी के चिन्ह नजर आने लगे।

(५)

पिता, माँ और बड़े भैया ने वापस आ, घर की जो हालत देखी, तो उनकी दशा उस बुलबुल की-सी हो गई, जिसका बरसों से जमाया आशियाना जल गया हो। माँ बिलख-बिलख कर रो पड़ी। पिता और बड़े भैया के दुख की सीमा न रही।

जब तक रहने-सहने का कोई उचित प्रबन्ध न हो जाय, बहुओं को बुलाना ठीक नहीं समझा गया। बड़े भैया किसी तरह एक-दो कमरों को ठीक करने में जुट गये। पर सिर पर अभी खपरैल का साया भी न हुआ था, कि एक ओर से आफत सामने आ खड़ी हुई। उस गाँव पर दस हजार का ताजीराती कर सरकार ने लगा दिया, जिसका बड़ा हिस्सा मँझले भैया के पिता का ही चुकाना था। चोट-पर-चोट इसी को कहते हैं। कर की नोटिस को देख, जिस तेजी और पीड़ा से माँ-बाप और बड़े भैया छटपटा उठे, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

इतनी बड़ी रकम उनके पास थी ही कहाँ, जो वे देते? बची खुची रकम दे भी देते, तो उससे छुटकारा कहाँ मिलता? और फिर तब तो रोटिया के भी लाले पड़ जाते। यह रकम कड़ी से-कड़ी सख्ती कर जल्द-से-जल्द वसूल करने को पुलीस को हिदायत थी। मियाद पूरी होने के पहले ही गाँव के नये मुसलमान और लीगी मुखिया के यहाँ पुलीस आ बैठी, और लोगों को वहीं बुला बुला हर तरह से उन्हें अपमानित कर, कर वसूल करने लगी। माँ बाप और बड़े भैया फिर कहीं भाग जाने की सोच ही रहे थे, कि पुलीस का आदमी दर-वाजे पर आ धमका। उस समय उनकी हालत कुछ वैसी ही हुई, जैसे किसी बँधे आदमी पर खूँख्वार बाघ को छोड़ देने पर उसकी होती है।

छुटकारे की कोई राह न थी। बूढ़े पिता को पुलीस के साथ

जाना ही पड़ा। रुपया होता, तो वे दारोगा के सामने उड़ेल देते पर यहाँ तो कुछ था ही नहीं। उस हालत में किन यातनाओं की आशा लिये, वे दारोगा के सामने खड़े हुये, यह सहज ही समझा जा सकता है। गाली-गलौज, मार पीट, जेल की धमकियों से भी जब दारोगा उनसे कुछ न निकाल सका, तो घर की तलाशी का और कुर्क करने का हुक्म दे दिया। कुर्क कराने के लिये जले घर के सिवा और उनके पास था ही क्या?

तलाशी हुई। खंडहर की जमीन का चप्पा चप्पा खोद डाला गया, पर वहाँ था ही क्या, जो मिलता? बड़े भैया इतने बेवकूफ न थे, जो इस दशा में अपना बचा-खुचा माल-मत्ता लेकर खंडहर में वापस आये होते। विवश हो, पुलीस दो-चार चाँटे माँ और बड़े भैया को भी लगा, बूढ़े पिता के हाथों में हथकड़ियाँ डाल, उन्हें लेकर चली गई।

मँझले भैया फरार थे। छोटे भैया की कोई खबर महीनों से न मिली थी। घर जल गया था। रोजगार खत्म हो चुका था। फिर भी उन्हें इतना दुख न हुआ था, जितना आज हुआ। पिता के हाथों में हथकड़ियाँ देख, माँ और बड़े भैया ने बिलख कर, अपनी भरी आँखें फेर ली। ओह, भाग्य में अभी और क्या-क्या देखना बदा है?

पिता अभी हवालात में ही पड़े तड़प रहे थे, कि एक दिन उनके दरवाजे पर एक पुलीस ने एक नोटिस टाँग दी, जिसमें लिखा था, कि राधाकृष्ण, उर्फ मँझले भैया अगर इस नोटिस के पन्द्रह दिन के अन्दर हाजिर न हुआ, तो उसका सब कुछ सरकार जब्त कर लेगी। अन्दर जाते, बाहर आते बड़े भैया की दृष्टि उस नोटिस पर पड़ती, और एक भावी आशंका से उनका रोम रोम कंटकित हो जाता। मुखिया और गाँव के कुछ लोगों ने माँ और बड़े भैया को समझाया भी, कि वे मँझले

भैया को हाजिर करा दें, तो अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है। पर उनके मुँह से जो एक बार निकल गया, हमें क्या मालूम कि वह कहा है', तो फिर कोई दूसरी बात न निकलना। बिगड़ने से अब रह ही क्या गया था, जिसे बचाने के प्रयत्न में वे अपने कलेजे के टुकड़े को आग में झोंक देते?

पन्द्रह दिन और पन्द्रह रातें माँ और बड़े भैया ने आँखों में ही काट दीं।

आज सोलहवाँ दिन था। मॅझले भैया हाजिर न हुये। अब क्या होगा? एक तरह की आशंका उनके दिल को जलाये डाल रही थी, पर क्या होगा की कोई कल्पना करने में भी वे असमर्थ थे। लुचे खुचे का अब कोई सोचेगा ही क्या। धन-जन, इज्जत-आबरू, घर-द्वार, रोजी रोजगार कुछ भी तो शेष न रह गया था, जिससे वंचित हो जाने का भय उन्हें होता। उन्हें क्या मालूम, कि उनके लिये अदृश्य ने अपनी झोली में क्या क्या जुल्म रख छोड़े थे?

माघ का महीना था। वर्षा हो रही थी। बर्फीली हवा ने जैसे सर्दी की रग रग में बर्फ की सूइयाँ लगा दी थीं। जमीन ठिठुर रही थी। वातावरण जम सा रहा था। हाथ पाँव गले जा रहे थे। दुबके दुबकाये लोग आग के पास बैठे सर्दी से बचने का असफल प्रयत्न कर रहे थे।

अचानक शाम को पुलीस की एक टुकड़ी बड़े भैया के खॅडहर के सामने आ खड़ी हुई। बड़े भैया ने आहट पा, झाँक कर जो ओवरकोटों के ऊपर लाल लाल पगड़ियाँ देखीं, तो उनकी और माँ की हालत कुछ वैसी ही हो गई, जैसे एक आदमी की उस दिन हो जाती है जिस दिन उसकी मृत्यु हो जाने की भविष्यवाणी ज्योतिषी ने की होती है, और सचमुच उसके सामने यमदूत दिखाई देने लगते हैं। भागने का कोई

रास्ता न था, वरना वे भाग भी जाते। अब ?

पुलीसमैन धड़धड़ाते अन्दर घुस गये कुछ बड़े भैया और माँ के सामने खड़े हो गये और कुछ खँडहर की ऐसे तलाशी लेने लगे, जैसे मँझले भैया कोई आदमी न हो, सूई हों, और किसी ताक के कोने में छिपे बैठे हों। मँझले भैया वहाँ थे ही कहाँ, जो उनके हाथ आते ? झुँझला कर, सब के-सब विवशता की बेजान मूर्त्ति बनी खड़ी माँ और बड़े भैया के सामने आ, चिल्ला चिल्ला कर गाली देते पूछ बैठे—"बता मँझले भैया कहाँ है, नहीं तो आज तुम लोगों की खैरियत नहीं ?"

बूटों की ठोकरें उठने को तड़पने लगीं। हाथ के कोड़े पड़ने को हिलने लगे। मुँह तो जो जी में आ रहा था, बके ही जा रहे थ। पर माँ और बड़े भैया के मुँह से जो एक बार निकला, कि उन्हें क्या मालूम कि वह कहाँ है, सो वही शब्द बार-बार निकलते रह। पुलिस की कोई ज्यादती उनके मुँह से और कोई बात न निकाल सकी।

आखिर तंग आकर, नायक ने कहा—"ऐसे यह हरामजादी राह पर न आयेगी! घसीट कर इसे ले चलो तालाब पर!"

तालाब! तालाब का ठंड से जमता हुआ-सा पानी! उफ, ये क्या करना चाहते हैं माँ को, बूढ़ी माँ को वहाँ ले जाकर ? बड़े भैया का कलेजा मुँह को आ गया। उन्होंने चीख कर कहा—"नहीं नहीं, ऐसा न करो! इस सर्दी, इस बारिश में इन्हें बाहर न ले जाओ!"

पर उनकी सुनता कौन ? एक पुलिस के एक जोरदार थप्पड़ ने उनके सफेद गाल पर पड़, उनका मुँह ही नहीं फेर दिया, बोलती तक बन्द कर दी। वह धड़ाम से मुँह से खून उगलते, फर्श पर गिर पड़े। ऊपर से दो एक बूटों की ठोकरें

उनके कुल्हों की उभरी हुई हड्डियों पर चटाख-चटाख बोल उठी।

माँ कुछ भी कहना, किसी तरह भी गिडगिडाना उन हैवानों के सामने व्यर्थ समझ, चुपचाप असह्य सर्दी से काँपती, उनकी असह्य बातें सुनती, उनके हाथों, कोडों और बूटों की असह्य चोटें खाती, मूर्ति की तरह खिसकती चली जा रही थीं।

वर्षा हो रही थी। सामने तालाब के जमे से पानी मे टप-टप बूँदे पडती थी, तो ऐसा लगता था, जैसे आग के तालाब में जगह जगह चिनगारियाँ चिटख रही हों। गरम पानी से जैसे शरीर जल उठता है, ठीक वैसे ही ठडे पानी से भी। और तालाब का पानी मामूली ठडा भी तो न था।

नायक ने माँ की कमर में बूट की एक ठोकर दी। माँ आह कर, पानी मे लुढक गयी। पुलीसमैनों ने ठहाका लगाया। नायक बोला—"देखो, अब भूत सिर पर चढकर बोलेगा!"

पर माँ के अन्दर कोई भूत न था, जो बोलता। उनके अन्दर तो माता का हृदय था, जिसकी ममता, स्नेह, वात्सल्य की गहराई को दुनिया मे न कोई अब तक नाप सका है, और न आगे ही नाप सकेगा। सारी यातनाओं का अन्त मृत्यु है। माँ के लिये बेटे की रक्षा के लिये मृत्यु का वरण करना कोई असम्भावित घटना नहीं। माँ ने एक बार इसे सोचा। फिर आँखे मूँद कर, जो वह खडी हो गयीं, तो फिर कहाँ क्या हो रहा है, इसका भी ज्ञान जैसे उन्हें न रह गया।

कुछ-कुछ देर के बाद एक या दूसरा पुलीसमैन माँ को टँकोह कर, कहता—"बोल, अब भी बता दे, नहीं तो गल जायगी इस बर्फ के पानी में!"

पर माँ सुन ही कहा रही थीं, जो जो कुछ बोलती?

रात गल रही थी। शीत की तीव्रता सहने की सीमा को

लाँघने लगी थी। पुलीसमेन ओवरकोट में भी ठिठुरे जा रहे थे। पर माँ ? उनका शरीर तो जैसे हाड़-माँस का बना ही न था। वह तो बिलकुल पत्थर की मूर्त्ति की तरह अडिग, शान्त, अप्रभावित खड़ी थी यन्त्रवत्।

आखिर थक कर नायक ने कहा—"यह बुढ़िया तो बला की हिम्मत और इस्पात की शरीर वाली मालूम होती है!" उसकी झुँझलाहट की कोई सीमा न थी। वह उन्हें उसी वक्त मार डालता, अगर उनसे मँझले बेटा का पता उगलवा लेने की जरूरत न रहती।

सहसा छपाक की आवाज हुई। मुड़ कर देखा, तो माँ लकड़ी के एक कुन्दे की तरह पानी में डूब उतरा रही थी। वह सहसा चीख पड़ा—"नहीं, नहीं, इसे मरना नहीं चाहिये। इससे अभी हमें काम लेना है।"

उसके ऐसा कहते ही दो पुलीसमैनों ने लपक कर माँ के ठंड से अकड़े शरीर को पानी से बाहर निकाला।

नायक ने झुक कर देखा, साँस चल रही थी। उसने कहा—"इसे अभी इसके घर पहुँचा दो। बच गयी, तो एक बार और कोशिश करके देखेंगे। आज की इतनी परेशानी बेकार ही साबित हुई।"

(६)

बुढ़िया के बच जाने की खबर सुन, पुलीसवालों को वैसे ही खुशी हुई, जैसे शिकारगाह में आग लग जाने पर उसके बच जाने की खबर पा, शिकारियों को होती है। दारोगा ने एक क्रूर मुस्कान होठों पर ला, कहा—"अभी उसे चंगी होने का मौका दो। इस बार मैं खुद चलूँगा। जरा देखूँगा उसका दम-खम।"

बेचारे बड़े भैया को क्या खबर थी कि वे माँ की सेवा-सुश्रूषा कर जो उन्हें स्वस्थ कर रहे हैं, वह कुछ वैसे ही है, जैसे कोई रैयत अपने बकरे को मोटा करता है, जिस पर जमींदार की नजर लग चुकी हो।

जरायम पेशावालों से आये दिन साबिका पड़ने के कारण मामूली पढ़े लिखे दारोगा भी मानव-मनोविज्ञान के अच्छे ज्ञाता हो जाते हैं। दारोगा बुढ़िया के साथ जो कुछ किया गया था, उसकी पूरी कहानी अपने आदमियों से सुन चुका था। इससे भी अधिक सख्तियाँ किसी के साथ की जा सकती हैं, इसकी कल्पना भी वह करने में असमर्थ था। फिर भी बुढ़िया के मुँह से कुछ न निकाला जा सका, यह बात उसके चिन्तन का विषय बन गयी। बहुत सोच-विचार करने के बाद आखिर वह इस नतीजे पर पहुँचा, कि बुढ़िया के साथ कोई भी सख्ती कारगर नहीं होने की। अब की उसे दूसरे उपाय से काम लेना होगा। माँ अपने पर सब-कुछ बेटे के लिये सह सकती है, पर अगर उसी के सामने उसके बेटे पर सख्तियाँ की जायँ, तो शायद शायद और सहसा उसकी आँखें चमक उठीं। एक ही क्षण में प्रशंसा, इनाम, तरक्की और न जाने कैसी कैसी बातें उसके दिमाग में चक्कर लगा गयीं। वह उठा, और हुक्म दिया, कि पाँच तगड़े सिपाही तैयार हो जायँ, और दो मजबूत कोड़े भी स्टोररूम से निकाल लिये जायँ। साहब आज 'शिकार' पर जायगा। थानों में कोड़े नहीं रहते। पर वह जमाना और था। जहाँ मशीनगनों का इन्तजाम किया गया था, वहाँ कोड़ों की क्या गिनती ? उन दिनों पुलीस को बड़े लाट से भी कहीं अधिक अधिकार सरकार ने दे रखे थे। वे जो चाहते, कर जाते। कहीं कोई टोकने वाला न था।

दिन के दो नज रहे थे। बीमार माँ फर्श पर पडी हुई थीं। बड़े भैया सिरहाने बैठे, उनके सिर मे तेल लगा रहे थे, कि बाहर से किसी की कडकील। आवाज आयी—"श्रीकृष्ण ! श्रीकृष्ण बाहर आओ !"

आवाज में जो अधिकार और अत्याचार का पुट लगा हुआ था, उसी का ख्याल कर, बड़े भैया का माथा ठनका। तो कहीं वे दोजखी कुत्ते फिर तो नहीं आ धमके ? पर उन्हें अन्दर आने से रोकता ही कौन ? वे तो सीधे धड़धड़ाते हुए पहुँच जाते हैं। शायद कोई और हो।

बाहर आ, उन्होंने अभी कुछ देखा भी न था, कि पूर्व योजनानुसार दो सिपाहियो ने उन्हें जकड कर पटक दिया, और देखते-ही देखते रस्सियों से उनके अग-अग चौड-चौड़ कर बाँध कर जमीन पर छोड दिया। फिर दो ओर से दो पुलीस हुमक-हुमक लगे बिना कुछ देखे उन पर कोडों की बौछार करने। बड़े भैया चीख पडे।

बिस्तर पर पडी माँ ने बडे भैया की चीख सुनी, तो हड-बडा कर उठ, बेतहाशा बाहर को दौड पडी। अभी वह दरवाजे पर भी न आ पायी थी कि दो पुलीसमेनो ने लपक कर, उनके दोनो बाजुओं को पकड़, करीब-करीब उन्हें उठा कर, बड़े भैया के सामने ला खडा कर दिया। माँ ने अपनी ही आँखो के सामने बेटे की जो दुर्गति देखी, तो उनके मुँह से भी एक चीख निकल गयी— 'नहीं, नहीं, इसे मत मारो ! इसने सरकार का कभी कुछ नहीं बिगाडा !"

दारोगा के होंठों पर सफलता की एक मुस्कान दौड़ गयी। जादू ने अपना काम शुरू कर दिया है। उसने हुक्म दिया—"और जोर से, और जोर से !"

सट-सट सटाक ! सट-सट-सटाक ! कोड़ों में और भी जोर आ गया। बड़े भैया के शरीर के जिस हिस्से पर भी कोड़े पड़ते, चमड़ी उधेड़ कर रख देते, खून की धारें छर्र-छर्र फव्वारों की तरह फट पड़तीं। वह चीखते, प्राणों का जोर लगा चीखते। जैसे उनकी चीख सुन कर, उनकी रक्षा के लिये कोई आ जायगा। बड़े भैया को इस तरह के जुल्म से पहिली बार साबिका पड़ा था। यों भी वह बड़े सीधे, कोमल और निरीह स्वभाव के थे। उन पर ऐसे जुल्म करना गोया गाय पर अत्याचार करना था। मूक, भोली गाय के पास अत्याचार के विरुद्ध चीखने के सिवा चारा ही क्या होता है? उसमें इतनी सहन-शक्ति कहाँ होती है, कि वह चुपचाप अपने पर किये गये अत्याचार को सह ले?

"मेरे बेटे को छोड़ दो! इसके बदले मुझे मार डालो!" बार-बार माँ प्राणों का जोर लगा, बेहाल हो, चीखतीं, और अपने को पुलीसमैनों की जकड़ से छुड़ा, अपने बेटे पर सुरक्षा की देवी की तरह पर फैला, उसे अपनी गोद में छिपा लेना चाहतीं। पर हाय री विवशता!

दारोगा की एक आँख माँ पर और दूसरी बड़े भैया पर टिकी थी। ठीक उसी तरह जैसे चिड़ीमार की एक आँख कंपे पर और दूसरी चिड़िया पर होती है।

सट-सट-सटाक! सट-सट-सटाक! कोड़े अन्धाधुन्ध पड़ते जा रहे थे। चमड़ी के बदले अब मांस के जिन्दा टुकड़े कोड़ों से लिपट जाते। फिर जो वे कोड़ों को फटकारते, तो ये जिन्दा टुकड़े हवा में तड़पते हुये उड़ते नजर आते। जगह-जगह उनके शरीर की हड्डियाँ नंगी हो गयीं। उनकी चीखें भी जैसे अब थक कर मन्द पड़ने लगीं।

माँ ने एक बार फिर अपने को छुड़ाने को जोर लगाया,

पर दो मुस्टंडों के आगे एक बूढ़ी, बीमार की क्या चलती ?

दारोगा ने फिर रद्दा जमाया—"और जोर से ! और जोर से !" फिर मा की ओर मुड़ कर पहिली बार कहा—"अब बता तो सँभले भैया का पता, वरना वरना "

एक बेटे को बचाने के लिए दूसरे बेटे का बलिदान ! मूर्ख दारोगा के दिमाग में इस क्रूर व्यापार का यह पहलू शायद नहीं आया था।

तो यह बात है ! बड़े भैया के साथ यह अमानुषिक अत्याचार कर, दारोगा सँझले भैया का पता जानना चाहता है ! एक बेटे के बच जाने का लोभ दिखा, वह दूसरे बेटे को फाँसी पर चढ़ा देने के लिये माँ से उसका पता पूछना चाहता है ! एक आँख के बच जाने का भरोसा दिला, वह दूसरी आँख फोड़ देना चाहता है ! माँ के कलेजे के दो टुकड़ों में से एक को छेद कर, दारोगा चाहता है, कि माँ दूसरे टुकड़े को निकाल, उसे कबाब बनाने के लिये दे दे। माँ अट्टहास कर उठीं। उनकी दीवानों जैसी हालत देख, दारोगा हकबकाया सा उनका मुँह देखने लगा। पर दूसरे ही क्षण जैसे फिर होश में आ, बेहद बौखला कर चीखा—"और जोर से ! और जोर से !"

सट-सट सटाक ! सट-सट-सटाक !

माँ ने दाँतों को जोर से भींचा। उनका चेहरा तमतमा कर सुर्ख हो गया। कनपटियों की बूढ़ी रगें मोटी हो-हो उभर आयीं। आँखों में एक अदम्य निश्चय की चमक कौंध उठी। शरीर फूल-सा गया। एक दैवी शक्ति से उनकी रग रग जैसे फड़कने लगी। और दूसरे क्षण सहसा जो उन्होंने जोर लगा, झटका दिया, तो दोनों पुलीसमैन दो ओर भहरा कर गिर पड़े, और वह बड़े भैया पर जा ऐसे हाथ-पाँव फैला कर पड़ गयीं,

जैसे पक्षी अपने अंडे पर पर फैला कर बैठता है। फिर मुँह ऊपर कर, उन्होंने चीख कर कहा—"मारो! आज जितना चाहे, मारो! पर याद रखना, कि तुम भी किसी के बेटे हो तुम्हारी भी कोई माँ है! भगवान न करे, कि तुम पर भी कभी कोई ऐसी मुसीबत तुम्हारी माँओं की आँखों सामने ही आ टूटे!" कह कर, उन्होंने बेटे के मुँह पर अपना मुँह रख दिया। अब तक उन पर कितने कोड़े बरस चुके थे, यह कोड़े चलाने वालों को भी नहीं मालूम।

दारोगा की रूह काँप उठी। माँ की आवाज जैसे उसी की माँ की नहीं, बल्कि दुनिया की सारी माँओं की चीख बन, उसकी आत्मा में गूँज उठी। बेसाख्ता वह चीख पड़ा 'छोड़ दो! माँ जीत गयी! जुल्म हार गया!"

ऐसी बात दारोगा के मुँह से कैसे निकल गयी, इसका जवाब उसने उसी समय थाने में जा, अपना इस्तीफा दाखिल करके दिया।

बड़े भैया, निरीह बड़े भैया के लिये तो एक चाबुक ही उनके प्राण लेने के लिये काफी था। कोड़ों की बौछार की ताब वह कहाँ से ला सकते थे? उस दिन माँ उन्हें कोड़ों की बौछार के नीचे से बचा तो लायी, पर अदृश्य मृत्यु से लड़ने की शक्ति वह मानवी कहाँ से लाती?

कोई कोशिश कारगर न हुई। आखिर बड़े भैया चल ही बसे।

कला और विज्ञान

विज्ञान डाक्टर है और कला उसकी पत्नी।

ब्याह हुये छै साल गुजर गये, पर कला के रूप रग, यौवन, आकर्षण, शरीर की यष्टि में किसी प्रकार का भी अन्तर नहीं हो पाया है। बल्कि उसके मित्रों और सहेलियों का कहना है कि ज्यों-ज्यों दिन गुजरते जाते हैं, कला का सौंदर्य निखरता जाता है। और इस सब का श्रेय डाक्टर विज्ञान को है। वह शरीर-विज्ञान का कुशल डाक्टर है। वह जानता है कि शरीर और यौवन की किस प्रकार रक्षा की जाय कि उन पर आयु का प्रभाव न पड सके। और इस प्रयत्न में वह अब तक पूर्ण रूप से सफल रहा।

यह जोडी जब शाम को सज-धज कर सैर को निकलती, तो मुहल्ले वालों की नजरें बरबस ही उस पर टिक जाती। द्वार पर गोद में नन्हा शिशु लिये खड़ी कोई दुबली पतली युवती कला का यौवन लास्य देखती, तो सहसा ही उसको कुछ धँसी, स्याह-सी पडी आँखों में अतीत करुणा की छाया बन सामने धुँधलका-सा फैला जाता, और उस धुँधलके में जब उसकी कुछ ही साल पहले की यौवनपूर्ण मूर्ति, किसी काले आर्ट पेपर पर उभरे हुये रेखा-चित्र की तरह झलमला उठती, तो उसके मुँह से एक आह निकल जाती, और आँखें तिलमिला कर बन्द हो जातीं। ऊपर छज्जे पर खडे किसी युवक की नजर जब इस जोड़ी पर पडती, तो वह कमरे में बैठी बच्चे को स्तन-

"पान्न कराती अपनी पत्नी को ऐसी नजरों से देखता, जिनमे जैसे प्यासी हसरतो की चीख होती, और अतृप्त वासनाओं का क्रन्दन होता। और जब बूढे, बूढी उन्हें देखते, तो कहते, 'ऊँह, छै साल हो गये, अभी तक किसी पूत-परास का नाम नही! मालूम होता है कि इन दोनो में स एक न-एक ' और कह कर वे ऐसे सिर हिलाते, जैसे दूर भविष्य की बात उन्हें अच्छा तरह मालूम हो।

पर कला और विज्ञान को किसी की ओर ध्यान देने या किसी की बात सुनने का जैसे अवसर ही नहीं था। वे अपनी मस्ती मे झूमत, आँखों मे मुस्कराता गर्व लिये एसे निकल जाते, जैसे यौवन और प्रेम-भरे किसी गीत की मादक स्वर-लहरियाँ हवा को मस्ती मे सराबोर करती गुजर जाती है।

उस दिन पार्क के फाटक पर सहसा अपनी कालिज की सहेली कल्पना को देख अनियन्त्रित-सी कला दूर से ही पुकार उठी—"कल्पने!"

कल्पना ने बच्चे की गाडी के हैंडिल पर ही हाथ रखे किसी की पुकार सुनी, तो अकचका कर सिर उठा विस्फारित नेत्रों से देखा, सामने ही कला उसकी ओर भागी आ रही थी। उसकी आँखों मे सहसा ही उसे देख कर हर्ष चमक उठा। वह भी अपने को रोक न सकी। गाडी वहीं छोड दौड पडी।

न जाने कब की बिछुडी सहेलियाँ जब मिलीं, तो एक-दूसरे से ऐसे लिपट गयीं, जैसे अब कभी जुदा होंगी ही नहीं।

विज्ञान पास आ अपनी मुस्कराती आँखों से थोडी देर तक खोया-सा निरखता रह गया। फिर बोला—"कला!"

कला जब कल्पना से अलग हुई, तो उसकी आँखों मे हर्ष-विह्वल बूँदे झलक रही थीं। आँचल के कोर का फूल बना

उससे आँखों का पानी सुखाते बोली—'यह रही मेरा कालिज की सहेली कल्पना ! और यह यह मेरे "

"मैं समझ गयी," बीच ही में मुस्कराती, विज्ञान की ओर देख, तनिक शर्म से पलकें झपकाती कल्पना बोल पड़ी—"नमस्ते !"

"नमस्ते !" हाथ जोड़ विज्ञान ने भी प्रत्युत्तर दिया।

"कहो, कल्पने "कला कुछ कह ही रही थी कि फाटक पर खड़ी गाड़ी में पड़े शिशु की जोर जोर से रोने की आवाज आने लग गयी। कल्पना व्यस्त-सी होती बोल पड़ी—"कला बहन, माफ करना ! मेरा बेबी "और कहती हुई वह गाड़ी की ओर बेतहाशा भाग खड़ी हुई। विज्ञान और कला उसकी ओर यों देखते रह गये, जैसे वे बहुत भूखे हों, और सहसा किसी ने उनके सामने से परसी थाली खींच ली हो। उसकी इस उपेक्षा के कारण मन-ही मन झुंझलाते वे दूसरी ओर मुड़ने ही वाले थे कि गोद में बच्चे को दुलराती कल्पना पुकार उठी—"कला बहन, इधर इधर !"

कुछ अनिश्चित ढंग-से वे उसकी ओर बढ़े। पास पहुँचे, तो दूध पिलाई की टोंटी बच्चे के मुंह से डालती कल्पना व्यस्त-सी हो बोली—"यह मेरा बेबी, और ये ये," बगल में खड़े कवीश की ओर आँख तिरछी कर बाकी शब्द होंठों में ही चबा गयी।

कला और विज्ञान दोनों के हाथ एक ही साथ जुड़ गये और दोनों ने एक ही साथ कहा—"नमस्ते !"

"नमस्ते !" कवीश ने बारी-बारी से दोनों की ओर सिर हिला कर कहा।

कला और विज्ञान की नजर बार-बार कल्पना और कवीश से हो बच्चे पर जा ठिठकती, जैसे उन दोनों के बीच वह एक

ऐसा प्रश्न बन पड़ा था, जो उनकी समझ न आ रहा हो।

बार-बार उन्हें बच्चे को यों नजर गड़ा-गड़ा देखते देखा, तो कल्पना मुस्कराती आँखों में उलाहना भर, कुछ बनती हुई बोली—"यों क्या देख रहे हो तुम लोग? कहीं नजर जरूर न लगा देना मेरे बेबी को!" कह कर उसने कपड़े से बच्चे को ठुड्डी तक अच्छी तरह ढँक दिया।

विज्ञान झेंप कर दूसरी ओर देखने लगा। कला अपनी झपकती आँखों में झेंप को छिपाने का प्रयत्न करती-सी होठों पर हास ला बोली—"सच, कल्पने, तुम्हारा बेबी है बहुत प्यारा!" और कह कर वह गाड़ी पर झुक पड़ी, और बच्चे के फूले गाल चूम लिये। बच्चे ने अकचका कर अपनी गोल गोल, चमकीली आँखों को नचाते किसी अजनबी को अपने पर झुका देखा, तो मुँह फेर चीख पड़ा।

कल्पना ने बनावटी क्रोध का भाव आँखों में झलका, कला के गुदाज बाजू में चिकोटी काट कहा—"रुला दिया न तुमने मेरे बेबी को!" और बच्चे को पुचकारती तुतली बोल में बोल पड़ी—"च-च, बड़ी शैतान है तेरी मासी!" फिर उसका हाथ उठा तकिये पर धीरे से पटक कर कहा—"मार दे तू भी इसे!"

लान के किनारे गाड़ी खड़ी कर सामने की एक बेंच पर कला और कल्पना, और दूसरी बेंच पर विज्ञान और कवीश बैठ गये।

कला ने कहा—"तू यहाँ कब से है, कल्पने?"

"करीबन एक महीना हो गया। मुझे क्या मालूम कि तू भी यहीं है। नहीं तो अब तक कई बार मिले होते।" कल्पना ने कहा।

"कहाँ बंगला लिया है ?'

"सिविल लाइन्स में, हरनर्ट रोड, नम्बर सात।"

"अरे, तब तो हम पास-ही पास हैं। मेरे बंगले का पता गार्बर्ट स्ट्रीट नम्बर ग्यारह है।"

"चलो, अच्छा हुआ। बड़ी आसानी से आ-जा सकेंगे हम। यहाँ अकली ही हो या घर का और कोई है ?"

'बस, हम और वह है। दो-एक नोकर-चाकर हैं। बड़े मजे में कट जाती है।"

"अच्छा तो मालूम होता है विज्ञान बाबू " आँखों में एक रहस्य-भरी मुस्कान ला कल्पना कहते-कहते चुप हो गयी।

उत्तर में कला का शरमाया चेहरा झुक गया। काली-काली अलकों के परदे से झाँकती हुई कानों की लवें ऐसी सुर्ख हो गयी, जैसे उनसे अब खून की बूंदें टपक ही पड़े गी।

"बड़ी खुशी हुई मुझे, कला, यह जान कर। हमारे वह भी " अब की शरमाने की बारी कल्पना की थी। उसका सिर झुकने ही वाला था कि कला उसकी ठुड्डी में उँगली डाल उसे ऊपर उठाने लगी। कल्पना ने झुका हुआ सिर एक ओर झटक क्षण में स्वस्थ-सी हो जब अपनी आँखें कला पर उठायीं, तो कला की आँखें भी जैसे उसकी आँखों को पढ़ने ही की प्रतीक्षा में थीं। उस समय दोनों की आँखों में से किसकी आँखों में प्रसन्नता और सन्तोष की अधिक चमक थी, नहीं कहा जा सकता।

"कला, तेरी शादी तो मुझसे दो साल पहले ही हुई थी न ?" कल्पना ने बात का नया सिलसिला जोड़ा।

"हाँ, उम्र में भी तो मैं तुमसे दो साल बड़ी हूँ।"

'और अब तक ?" आँखों में एक प्रश्न छिपाती अपने बच्चे की ओर देखती कल्पना ने कहा।

"उसकी ओर हमने कभी ध्यान ही नहीं दिया," कला ने उपेक्षा के भाव से कहा।

"यह मैं नहीं मानने की !" सिर हिलाते कल्पना ने कहा।

"सच, कल्पने, हमारा वर्त्तमान इतना आनन्दमय है कि जी मे आता है कि ऐसे ही जीवन बीत जाता, तो बड़ा अच्छा होता !" अपने सुख स्वप्न मे खोई-सी कला बोली।

"यह तुम बोल रही हो, या तुम्हारे हृदय में बैठे विज्ञान बाबू ?" हास का पुट दे कल्पना बोला।

"यह हम दोनो की धारणा है। मगर कल्पने, यह तू क्या बुढ़ियो की तरह बच्चो कच्चों की बाते ले बैठी ? आज की तेरी बाते सुन मै सोच रही हूँ कि हमने कालेज में जो तेरा नाम 'बड़ी बी' रखा था, वह बिलकुल ठीक था !" कह कर कला खिलखिला कर हँस पड़ी।

"अच्छा, अच्छा, नई नवेली जी, मैं देखूँगी कि कब तक आप का यह प्रेयसी रूप बना रहता है, और कब तक "

कल्पना की बात अभी पूरी भी न हो पायी थी कि कवीश सहसा उठकर सामने आकाश पर आँखें उठा बोल पड़ा—"कल्पना, जल्दी करो ! पानी बरसने वाला ही है !" कह कर वह शीघ्रता से गाड़ी की हैंडिल पकड़ तेजी से आगे बढ़ने को उद्यत हो उठा।

मिनटो मे ही सामने से काली घटा झूम कर उठी, और आसमान पर छा गयी। शीघ्रता मे ही वे एक दूसरे से विदा हो अपनी-अपनी राह पर लम्बे-लम्बे कदम रखते बढ गये।

(२)

कला को अवकाश की कमी नहीं थी। घर का सारा काम-काज नौकर करते। विज्ञान जब तक घर मे रहता, उसी वक्त तक उसकी व्यस्तता रहती। जब वह डिसपेंसरी चला

जाता, तो कला समय काटने के लिये किताबों का सहारा लेती। उन किताबों का विषय विशेषकर सौन्दर्य-विज्ञान और पति-पत्नी के सफल जीवन से सम्बन्ध रखता। कला पढ़ती, और नित्य पढ़ी हुई बातों का प्रयोग अपने शरीर और जीवन में करती। ऐसा करते-करते वह शृंगार-कला और रति कला में इतनी निपुण हो गई थी कि विज्ञान रोज उसमें एक नवीन आकर्षण का अनुभव करता, उसे लगता जैसे कला वह चन्द्र-कला है, जिसकी नैसर्गिक सौन्दर्य-मोहिनी सृष्टि के अन्त तक एक-सी बनी रहेगी, जिसे रोज देखते रहने पर भी जैसे आँखें कभी एकरसता का अनुभव न करेंगी।

किन्तु इधर जब से कल्पना शहर में आ गयी है, कला के अवकाश का अधिक समय उसी के यहाँ बीतता है। कल्पना भी कभी-कभी उसके यहाँ आ जाती है, किन्तु उसे अधिक अव-काश नहीं मिलता। कनीश की आय उतनी अधिक नहीं है, और कल्पना को स्वय ही घर के कामों में हाथ जलाने और नाखून तोड़ने पड़ते हैं। और सब के ऊपर व्यस्तता का कारण उसका बेबी है। बेबी क्या हुआ, कल्पना जैसे दुनिया की ऐसी व्यस्तता में फँस गयी कि कभी फुरसत मिलती ही नहीं। कला उसे यों व्यस्त देखती है, इसीलिये वह कल्पना से शिकायत नहीं करती कि वह भी क्यों नहीं उसी की तरह रोज-रोज उसके यहाँ आती। दोनों का स्नेह सम्बन्ध शिकवा-शिकायत और तकल्लुफ के ऊपर है। कला के पहुँचने पर कल्पना किसी काम में व्यस्त रहती है, तो कहती है—"तब तक अपने नन्हें दोस्त की मिजाज-पुर्सी कर लो। मैं अभी आयी।"

कला पालने में झूलते बेबी के पास पहुँच जाती है। देखती है, कि बेबी पैरों के दोनों अंगूठे हाथों में लिये मुँह में मेल कर उनका अमृत-रस पान करने में मगन है। वह उसके नन्हें हाथों

को अपने हाथों में ले आँखों को मटका कर कहती है—"कहिये जनाब, मिजाज कैसे है ?"

बेबी अकचका कर अपनी गोल-गोल आँखों को नचाता हुआ ऊपर उठाता है। पर दूसरे ही क्षण कल्पना को पहचान कर अपने हाथों को छुड़ाता, पैरों को पटकता किलक उठता है। उसके नन्हे-नन्हे दूध के दाँत दमक उठते हैं, आँखों की चंचल पुतलियाँ चमक उठती हैं। हृदय की बात जैसे जोर लगा कर कहता है—"मा मा" मतलब होता है, 'मारी, मैं अच्छा हूँ।'

कला का हृदय अनजाने ही उसकी किलक से झूम उठता है। आँखों में खुशी की चमक भर उठती है। वह अनियन्त्रित-सी हो, बेबी को उठा, उसका सिर अपनी हथेलियों पर और शरीर बाहों पर रख, हृदय का सारा स्नेह ओठों पर ला 'मेरा बेबा, मेरा बेबा' कहती कमरे में नाचने लगती है। बेबी उछल उछल कर, हाथ पैर पटक-पटक कर, खिल-खिल कर जोरों से हँस पड़ता है। इसी बीच कल्पना काम से छुट्टी पा दरवाजे पर आ कला को यों बेबी के साथ मगन देखती है, तो उसका निचला होंठ दाँतों-तले आ जाता है, आँख कुछ फैल जाती है, और सिर ऐसे हिलता है, जैसे कह रही हो 'मन खूब भी शना-सम पीरॉन-पार सारा'।

कल्पना को यों अपनी ओर देखते यदि कला देख लेती है, तो जैसे अपनी कोई चोरी छिपाती, अपराधी की तरह सहसा बेबी को पालने में डाल सिर झुका खड़ी हो जाती है। बेबी यों अचानक कला की बाहों के आसमानी झूले से निर्जीव पालने में आ झुंझला कर चीख उठता है—"ऍं ऐ!" तब कल्पना कला की ओर से चश्मपोशी करती, व्यस्त-सी हो, पालने पर

झुक, बेबी के गालों को थपथपा, शब्द-शब्द में लाड भर कहती है—"किसने मार दिया बेबी को !"

बेबी रोता ही कह उठता है—"मा-मा "

"ओ-हो, मासी ने मार दिया ! बड़ी शैतान है तेरी मासी ! ले ले, तू भी मार दे इसे !" बेबी को गोद मे उठा, उसका हाथ अपने हाथ मे ले, कला की ओर बढ़ा कल्पना कहती है।

बेबी हाथ अकड़ा लेता है। कल्पना तब बन कर, आँखे मटका कहती है—"अच्छा, तो यह बात है ! तू मासी को क्यो मारने लगा ? फिर क्यो रोता है ? चुप-चुप !" कह कर वह बेबी के गाल को अपने गाल से सटा उसे दुलारने लगती है। बेबी अपने दोनो हाथ फैला कला की ओर जाने को मचल उठता है।

"ओ हो ! तो अब मेरी गोद भी काटने लगी ? भला कौन-सा जादू कर दिया है मासी ने ?" कला की ओर विनोद-भरी आँखे फेरती वह कहती है—"लो, भाई, लो ! कहा है न कि 'माई मर, मौसी जिये !' वही बात है। तुम्हारे रहते अब इसे मेरी चिन्ता ही क्या रहने लगी !" कह कर वह बेबी को कला की गोद मे डाल देती है। कला को उस समय अनजाने ही लगता है कि सचमुच वही बेबी की माँ है और कल्पना उसकी मासी।

थोड़ी देर में कल्पना दूध-पिलाई मे दूध भर कला को दे कर कहती है—"लो, इसे दूध पिला दो ! वक्त हो गया है।"

कला हाथ मे दूध-पिलाई ले उसकी टोंटी बेबी के मुँह में डाल देती है। बेबी चाभर-चाभर दूध पीने लगता है। पर उसकी गोल-गोल, चमकीली आँखे कला के मुँह पर ही नाचती रहती हैं। और कल्पना पास ही बैठी अपनी रहस्य-भरी आँखों से कभी बेबी को देखती है, कभी कला की आँखों को, जिनमे लगता है, वात्सल्य लबालब भर अब छलकेगा, अब छलकेगा।

(३)

रंग-बिरंगे फूलों और भोले-भाले बच्चों को कौन प्यार नहीं करता ? कला यदि कल्पना के प्यारे बेबी को प्यार करने लग गई, तो इसमें आश्चर्य की कौन बात है ? कला के मन में भी यह प्रश्न उठा, और उसे उत्तर भी मिल गया। कला किसी प्रकार भी इस बेबी के कारण बदली नहीं है। उसकी भावनाओं और धारणाओं में कोई अन्तर नहीं आया है। यह तो मामूली बात है कि पहले की तरह अब वह अवकाश का समय सौन्दर्य-प्रसाधनों को इकत्रित करने और अपने शृङ्गार आदि में नहीं लगा पाती। अब जब भी उसे अवकाश होता है, वह अपनी सहेली कल्पना के यहाँ चली जाती है। उसका साथ उसे अच्छा लगता है, उसकी बातें उसे प्यारी लगती हैं। और उसका बेबी ? हाँ, वह है ही कुछ ऐसा नन्हा मुन्ना, भोला-भाला, प्यारा-प्यारा कि '

यों कला के दैनिक जीवन में जो परिवर्तन आ गया है उससे भले ही वह अनभिज्ञ हो, पर विज्ञान उसे लक्ष्य कर ही गया। जिस रूप में अब तक वह कला को देखता आया है, अब कला उस रूप में उसे दिखाई नहीं देती। सुबह जिस साड़ी में उसे छोड़ कर वह डिस्पेंसरी जाता है, उसी में वह उसे दोपहर को और शाम को भी देखता है। सौन्दर्य और शृङ्गार के प्रसाधनों का भी अब वह पहिली रुचि और चाव से उपयोग नहीं करती, यह भी वह समझने लगा है। पर ऐसा हो क्यों रहा है, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा है। कई दिन ऐसा होते देख एक दिन उसने रात को सोते वक्त कला को टोका—"क्यों, कला, आज-कल तुम कुछ उदास रहती हो ? तबीयत तो ठीक है न ?"

कला यह सवाल उठने का कोई कारण न जान थोड़ी बोली—"भला ऐसी कौन सी बात तुमने देखी, जिससे मेरी तबीयत खराब मालूम होती है ?"

"कुछ देखता हूँ, तभी तो पूछ रहा हूँ," कला को अपने प्रश्न की ओर से उदासीन देख उसे अपनी ओर रुजू करने के लिये विज्ञान ने कहा।

"भला क्या ?" अधिक उत्सुक हो कला बोली।

"कला, यौवन और सौन्दर्य से आदमी की दिलचस्पी जब तक रहती है, तभी तक उसके जीवन में आनन्द और उमंग रहती है। जैसे ही यह इनसे उदासीन हो जाता है, समझ लो, जिन्दगी ऐसी रूखी फीकी हो जाती है, जिसमें कोई मजा नहीं, कोई उत्साह नहीं। इस दशा में आदमी जवान होते भी बूढ़ा हो जाता है। मैं कई दिनों से यह लक्ष कर रहा हूँ कि पहले की तरह तुम्हें अब अपने को सुन्दरतम रूप में उपस्थित करने की चिन्ता नहीं रहती तुम जैसे अपने से ही कुछ उदासीन-सी हो गई हो। कला, भूलो नहीं, कि तुम्हारे इस परिवर्तन का कुप्रभाव मुझ पर भी पड़ सकता है, क्योंकि मेरे जीवन की सारी उमंग, सारा उत्साह और सारा आनन्द तुम्हीं को लेकर है। शायद तुमने यह न देखा होगा कि पहले तुमको नये-नये रूप में देख कर मुझे जो खुशी होती थी, अब वह खुशी जैसे हवा हो गई है। डिस्पेंसरी में भी मेरा तबीयत नहीं लगती। कला, पुरुष अजीब धातु का बना प्राणी होता है। वह रूप और सौन्दर्य का तो घोर लोभी है ही, साथ ही वह नवीनता का भी ग्राहक है। नारी यदि उसे बाँध रखना चाहती है, तो उसके लिये अपने रूप और यौवन को कायम रखने के साथ यह भी आवश्यक है कि वह पुरुष के सामने अपने को सदा

इस रूप में उपस्थित करे कि उसे सदा उसमें कोई-न-कोई नयापन, कोई न कोई नया आकर्षण दिखे। कला, ”

बीच ही में विज्ञान की बात शीघ्र खतम न होते देख कला बोल पड़ी—“समझ गई, समझ गई! तो तुम्हारा संकेत इस ओर है? देखो, भई, ऐसी कोई तब्दीली मुझमें हुई है, ऐसा तो मैं नहीं मानती। हाँ, यह ठीक है कि अब मेरा बहुत वक्त कल्पना के यहाँ गुजर जाता है। उसके यहाँ से लौटती हूँ, तो इतना अवकाश नहीं मिलता कि कपड़े बदल लूँ, बाल फिर से ठीक कर लूँ, क्रीम, पाउडर, लिपस्टिक ”

“तो क्या तुम यह नहीं समझती कि कल्पना से गप्पें लड़ाना जिस कदर जरूरी है, उससे भी अधिक जरूरी ”

“सो तो है ही! विश्वास करो, आगे से मैं इसका पूरा ख्याल रखूँगी। मेरी वजह से जो तुम्हें दुख हुआ, उसका मुझे अफसोस है। मैं नहीं समझती थी कि इस मामूली बात से तुम इस कदर नाला हो जाओगे। बोलो, माफ कर दिया न?”

दूसरे दिन कला ने निश्चय किया कि अब वह कल्पना के यहाँ जायगी ही नहीं, और पुन पहले ही की तरह अपना रग-ढङ्ग बना लेगी। निश्चय तो कर लिया, पर दूसरे ही क्षण मन में यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि उसके ऐसा करने से भला कल्पना क्या सोचेगी और उसका बेबी, जो उससे इतना हिला गया है, क्या उसे खोजेगा नहीं? यह प्रश्न उठना था कि कल्पना तो पृष्ठभूमि में चली गई, पर बेबी की उसकी ओर देखती गोल-गोल नाचती हुई, चमकीली आँखें, उसकी गोद में आने को उठे हुए नन्हें-मुन्ने हाथ और मुँह से जोर लगा कर निकाले हुए अस्फुट शब्द ‘मा मा जैसे कितनी ही पुकारें बन कर उसके कानों में बार-बार गूँजने लगे। तनिक देर तक

वह आत्म विस्मृत सी हो गयी यह न समझ पाई कि ऐसा क्यों हो रहा है। ओह, उसने तो अब तक यह कभी सोचा ही नहीं कि बेबी उसके दिल-दिमाग में इस तरह अपनी जगह बना चुका है! तो अब, हाँ, अब वह क्या करे? विरुद्ध भावनाओं की कशमकश में सहसा उसने अपने निश्चय से स्वयं ही कुछ झुक कर इस बात से सन्धि कर ली कि वह कल्पना के यहाँ जायगी तो, पर अधिक देर तक न रुकेगी।

उस दिन दोपहर के बाद जब विज्ञान डिस्पेंसरी चला गया, तो कला कल्पना के यहाँ गई। उस दिन बेबी की तबीयत कुछ खराब थी। वह रह रह कर जोर-जोर से रो पड़ता था, और हाथ-पैर पटक-पटक कर छटपटाने लगता था। कल्पना उसी को ले बुरी तरह व्यस्त थी। कला को जैसे ही बेबी ने देखा, उसकी ओर दोनों हाथ बढ़ा दिये। कला की गोद में बेबी को दे कल्पना ने तनिक खिन्नता से कहा कि बेबी की तबीयत कुछ खराब है, पल भर को न चैन लेता है, न उसे लेने देता है। वह कुछ परेशान-सी है। अनजाने ही कला के हृदय पर भी इस बात का कुछ असर पड़ा। वह बेबी के माथे पर हाथ रख, उसका पेट टो न जाने क्या-क्या देखने लगी। बेबी ने उसके कन्धे पर अपना सिर रगड़ा, तो वह उसे सटा कर थपकी देने लगी। थोड़ी ही देर में वह जैसे कुछ आराम महसूस कर सोने सा लगा।

थोड़ी देर के बाद कल्पना ने बेबी की आँखें बन्द देखी, तो बोली—"कला बहन, बेबी सो गया। धीरे से पालने में तो लिटा दो।"

कला ने ज्योंही उसका सिर कन्धे से उठाया कि वह जोर से चिहुँक कर रो पड़ा। लाचार कला फिर उसे वैसे ही सटा कर थपकी देने लगी। कई बार ऐसा ही हुआ, पर बेबी का

सिर जैसे ही कन्धे से हटता, वह चीख पडता, और कला को फिर उसे वैसी ही सटा लेना पडता।

कला यह सोच कर आई थी कि अधिक देर तक वह कल्पना के यहाँ न रुकेगी, पर यहाँ बेबी ने उसे ऐसे फँसा दिया कि जल्द छुटकारा मिलना असम्भव हो गया। देर होते देख कई बार वह मन-ही मन कुँभलाई भी, पर जैसे ही वह बेबी को हटाती, वह चीख पडता। तब वह सब-कुछ भूल उसी में व्यस्त-सी हो जाती।

यों बहुत देर के बाद सूरज डूबे जब बेबी गाढी निद्रा में डूब गया और कल्पना ने उसे फूल की तरह कला की गोद से ले पालने पर सुला दिया, तब कला को लगा, जैसे उससे कोई बहुत बडी गलती हो गई हो। सहसा विज्ञान का फूला चेहरा भी एक बार उसकी आँखों के सामने नाच उठा। वह घबराई हुई-सी कल्पना से विदा ले अपने बगले की ओर चल पडी।

ड्राइंग रूम में सचमुच विज्ञान फूला फूला बैठा था। शाम को लौटने पर कला का अनुपस्थित पा पहले आवेश में आ कुछ देर तक होंठों को दाँतों से चबाता, बारजे पर तेज कदमों से टहलता सामने से गुजरने वाली सड़क को देखता रहा, जैसे चाहता हो कि इस वक्त कला आये, तो देख ले कि उसकी अनुपस्थिति के कारण वह किस दशा में है। फिर बाद में ड्राइंग रूप में आ कोच पर जा बैठा, और अपने गृहस्थ जीवन की इस नई उलझन से सिर-मगजन करने लगा।

कला ने उसे ऐसे देखा, तो उसके पास आ अफसोस जाहिर करती बोली—"ओफ, देर हो गई! कल्पना के बेबी की तबीयत कुछ खराब हो गई है। इसी कारण इसी कारण अरे, हाँ, चाय पी तुमने ?"

विज्ञान जैसे और भी फूल कर कुप्पा हो गया। सिर एक ओर को गाड़ लिया।

कला अधिक व्यस्त सी हो, हाथ का बैग कोने के कोच पर घुसा कर फेंकती 'महराज-महराज' पुकारती रसोई की ओर बढ़ गई।

'कल्पना! उसका बेबी! ओफ! मालूम देता है, ये गोरे घर को उजाड़ कर छोड़ेंगे!' विज्ञान ने सिर उठा हथेली पर रखा, फिर कोच की बाँह पर पटक दिया।

"महराज, साहब की चाय जल्दी लाओ!" व्यस्त-सी ही वह पुनः दौड़ती हुई विज्ञान के पास सहमी हुई आ खड़ी हुई। बोली—"देखो, मजबूरी थी! वैसे मैं एक सहेली के नाते इतनी देर तक रुकने को विवश हो गई। नहीं तो ... नहीं तो ..."

"चाय अन्दर लाऊँ?" महराज ने दरवाजे पर ठिठक कर कहा।

कला की मनुहार जो काम न कर सकी, वह इस ख्याल ने, कि कहीं महराज उनकी इस घरेलू जिन्दगी की नग्नता न देख ले, एक क्षण में कर दिखाया। विज्ञान स्वस्थ-सा हो, अकड़ कर बैठता बोला—"कला वह चाय की मेज जरा इधर तो खींचना!" फिर दरवाजे की ओर आँखें कर बोला—"लाओ महराज!"

महराज ने होठों में ही यत्न से आती हुई मुस्कान को दबा मेज पर ट्रे रखते समय एक बार कनखियों से साहब का चेहरा देखना चाहा, पर साहब तो बगलें झाँक रहा था।

"हटो!" कला ने एक कुर्सी विज्ञान की बगल में खींचते हुए कहा। महाराज बाहर चला गया।

विज्ञान ने एक बार सन्देहात्मक दृष्टि से दरवाजे की ओर देख कर कहा—"तो ... तो ..."

"लो चाय पिओ !" कला ने चाय बना उसकी ओर प्याला सरकाते हुए कहा—"बेकार तुम इतने परेशान हो गये। मैं अभी कपड़े बदले लेती हूँ। पार्क चलोगे न ?" और मुस्कराती हुई बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये, गर्दन तनिक झुका, एक मनमोहक अदा से विज्ञान को देख, कन्धे से खिसक आये आँचल को लहराती वह ड्रेसिंग रूम की ओर बढ़ गई।

(४)

"कला बहन, सच मानो, उनकी तरक्की की जितनी खुशी मुझे है, उससे कहीं ज्यादा रंज इस तरक्की के कारण, उनका तबादला हो जाने से जो तुम लोगों से जुदा होना पड़ रहा है, उसका है। और यह बेबी," कला की गोद से हाथ के खिलौने से उलझे बेबी के गाल में उँगली गड़ा कर कल्पना बोली—"तो तुम्हें बहुत खोजेगा। तुम्हें न पा कुछ दिन तक जो मुझे यह परेशान करेगा, उसकी बात सोचकर अभी से जी घबरा रहा है।"

"क्यों, रे ?" बेबी के दोनों गालों को हाथ के अँगूठे और बाकी उँगलियों के बीच दबा कर कला बोली—"मैं तुम्हें याद आऊँगी ?"

"मा मा" बेबी बोल उठा। मतलब था, 'हाँ हाँ'।

दोनों जोर से हँस पड़ीं। फिर कला बोली—'सच, कल्पने, तेरा यह बेबी तो जादूगर है। जितना ही मैं इससे खिंची रही उतना ही यह जादू की तरह मेरे दिल में समता बन छाता गया। अब यह जुदा हो रहा है, तो सोच रही हूँ कि किसके साथ अब अपने अवकाश का समय बिताऊँगी ! क्यों रे, मुन्ने ?" कह कर वह तनिक देर के लिये बेबी के खिलौने से उलझ गई।

कल्पना मुस्काई। फिर आखो मे जैसे पुनीत आशीष भर बोली—"कला बहन, भगवान चाहेगा, तो जल्द ही तुम्हें एक नन्हा साथी मिल जायगा।"

भाव समझ कला शरमाई। फिर 'दुत !' कह कर दूसरी ओर मुँह कर लिया।

कल्पना को यह देख कर सन्तोष हुआ कि कला अब वह कला न रही, जो पहले दिन उससे पार्क मे मिली थी, जिस पर विज्ञान के यौवन और सौन्दर्य का नशा छाया था।

"टिकट ले लिये। कल्पना, अब तुम गाडी मे बैठ जाओ! सिर्फ दो मिनट और है।" कवीश बोला।

"अच्छा, कला बहन, ता "कह कर उसने कला की गोद से बेबी को लेने को हाथ बढा दिये।

बेबी ने दोनो हाथ कला की गरदन मे लपेट जतलाया, 'नहीं मैं तो मासी की ही गोद मे रहूँगा।'

'जाओ, बेबी तो मेरे साथ रहेगा।" कला परिहास का पुट दे बोली।

"कल्पना, जल्दी करो, भई!" गाडी से ही कवीश चिल्लाया।

"लाओ, कला बहन!' शीघ्रता जताती कल्पना गाडी की ओर देख बोली।

कला ने आखिर जब जबरदस्ती बेबी को कल्पना की गोद में दे दिया, तो वह जोर-जोर से क्रन्दन कर उठा। उसको उसी तरह गोद मे समेटे कल्पना गाडी पर चढ गई। बेबी 'मा-मा' करता वैसे ही चीखता-चिल्लाता रहा। कला की आँखे सहसा डबडबा आई, जैसे उसने अब जाकर अनुभव किया कि बेबी सचमुच उससे जुदा हो रहा है।

कला को यों देख कल्पना की भी आँख भर आई । कहा—"अच्छा, बहन, तो तुम अब जाओ !" कह कर उसने रोते बेबी के दोनों हाथ कला की ओर कर जोड दिये । बेबी की किसी को खोजती आँखें फिर कला से एक बार टकराईं । बेबी हाथों को कल्पना के हाथों से जोर कर छुडाता रुदन भरी आवाज में बोल पड़ा—"मा—मा !"

कला और अधिक न सह सकी । जल्दी में विदा ले, बिना देखे ही बेबी के गालों को चूम वह चल पडी । बेबी की आवाज उसके कानों में गूँजती रही, गूँजती रही ।

एक दिन कला ने सोचा था कि वह कल्पना के यहाँ जायगी ही नहीं और पुनः अपना रंग ढंग पहले ही की तरह बना लेगी । अब, जब कल्पना स्वयं अपने बेबी को ले चली गई, तो कला क्यों एक उदासी का अनुभव करती है ? क्यों नहीं वह अपने पुराने ढर्रे पर फिर जा लगती ? क्यों नहीं वह कल्पना और उसके बेबी का ख्याल छोड, विज्ञान, यौवन और सौन्दर्य की चिन्ता करती है ? ओह, यह क्या हो गया है कला को ?

विज्ञान को यह जान कर मन-ही-मन खुशी हुई कि कल्पना चली गई । चलो, बिल्ली के भाग्य से छींका ही टूट गया । अब कला पुनः अपनी पहली जिन्दगी दुहरायगी । अब फिर यौवन और सौन्दर्य के उपवन में नई-नई कलियाँ खिलेंगी । अब फिर उनका जीवन आनन्द और सुख से स्वर्ग बन उठेगा ।

दो-चार दिन तक जब कला को बराबर उदास देखा, तो सोचा, कदाचित सहेली की जुदाई का रंज हो । पर जब उसने इस रंज की उदास छाया को हफ्तों मिटते न देखा, तो वह चिन्तित हो उठा । आखिर एक दिन पूछा—"कला, तुम आज-कल क्यों उदास रहती हो ? पहले तो यह बहाना था कि कल्पना के यहाँ आने-जाने से साज-शृङ्गार का समय नहीं

मिलना। पर अब तो वह बात भी नहीं रही। फिर क्यों इस तरह खोई-खोई-सी रहती हो ? क्यों इस तरह हर बात से उदासीन-सी दिखाई देती हो ?"

कला थोड़ी देर तक चुप रही। क्या जवाब दे वह विज्ञान को ? वह जानती थी कि जो बात वह चाहती है, वह विज्ञान को पसन्द नहीं आयगी। कल्पना और उसकी बेबी के कारण उसके प्रेयसी रूप को बार-बार पीछे ठेल, उसकी नारी का मातृत्व जो अपनी पूर्णता के लिये या मचल उठा है इसे वह विज्ञान पर प्रगट कैसे करे ? विज्ञान चाहता है कि उसका प्रेयसी रूप ही सदा बना रहे, इसी में यौवन और सौन्दर्य है, जीवन का सर्वाधार आनन्द है। कला भी ना कभी यही चाहती थी। पर अब ? नहीं, अब तो उसे लगता है, जैसे उसका नारीत्व मातृत्व के फल-बिना व्यर्थ है, निष्फल है। वह वैसे नहीं रह सकेगी। उसे भी चाहिये कल्पना की बेबी की तरह एक बेबी, जिसके फूले-फूले गालों को वह चूम सके, जिसकी गोल-गोल, चमकीली आँखों में वह अपने हृदय का सारा स्नेह अपनी आँखों से उड़ेल सके, जिसके पतले-पतले होठों के 'मा मा' शब्द सुन निहाल हो सके, जिसे छाती से चिपका कर माता के स्वर्गिक सुख का अनुभव कर सके।

कई बार पूछने पर भी जब कला अपने हृदय की बात न कह सकी, तो विज्ञान जिद पर आ गया। तब कला ने सोचा कि कुछ इधर-उधर की कह वह विज्ञान को बहला दे। पर ऐसा वह कब तक कर सकेगी, यह सोच उसने हिम्मत से काम ले कह गुजरने की ही बात ठीक समझी। झिझकते झिझकते, अपनी बात की प्रतिक्रिया कनखियों से विज्ञान की आँखों के भाव से ताड़ते ताड़ते वह मन की बात कह गयी।

विज्ञान को उसकी बातें सुन कर सहमा लगा, जैसे कला

उसके जीवन के यौवन, सौन्दर्य, प्रेम और सुख के सदाबहार उपवन में पतझड को आमन्त्रित करने पर उतारू हो गई है। नहीं, नहीं अपनी जान में वह कभी ऐसा न होने देगा। वह कल्पना की नदी आखिर इसका दिमाग खराब कर गई न! उस समय वह इतना विक्षुब्ध हो उठा कि कुछ प्रतिवाद भी न कर सका। उठ कर बाहर चला गया।

आखिर जिस बात की आशंका कला को थी, वह हो कर रही। यह साधारण घरेलू द्वन्द्व तो था नहीं कि सुबह-शाम में खतम हो जाता। यह कला और विज्ञान का द्वन्द्व था, नारी और पुरुष का द्वन्द्व था, दो विरुद्ध भावनाओं और धारणाओं का द्वन्द्व था, मातृत्व के उत्तरदायित्व और प्रेयसी रूप के उच्छृंखल भोग का द्वन्द्व था, कला की नैसर्गिक सृष्टि और विज्ञान के वैज्ञानिक विध्वंस का द्वन्द्व था। चला, तो चलता रहा। दोनों रुष्ट थे, पर साथ ही गृहस्थ जीवन के उत्तरदायित्व को समझ कर कभी-कभी वे सन्धि की भी सोचते थे। विज्ञान समझाता, पर कला कुछ समझ न पाती। कला समझाती, पर विज्ञान कुछ समझ न पाता।

पता नहीं, यह द्वन्द्व कब तक चलता, पर एक भीगी रात को पुरुष लाख प्रयत्न करने पर भी अपने को न सँभाल सका। काम की अन्धता में वह सब-कुछ भूल नारी की सीमा में अपने बाँधने के लिये तैयार हो गया। कला मुस्काई। विज्ञान को इतना ज्ञान न था कि वह अपनी हार की बात सोचता।

(५)

समय पर कला माँ बन गई। जब वह अस्पताल से लौटी, तो विज्ञान ने देखा, कला के यौवन और सौन्दर्य का जैसे एक छिलका ही उतर गया था। बच्चा क्या हुआ, उसका रूप-रस ही

निचुड़ गया। गर्भाधान की स्थिति में विज्ञान ने उसके स्वास्थ्य और सौन्दर्य को बनाने रखने के लिये कुछ भी उठा न रखा। पर एक के निर्माण के लिये एक को जीवन की बाजी लगानी होती है। कला का जीवन तो बच गया, पर जीवन की बहुत सी बहुमूल्य वस्तुयें जैसे सदा के लिये नष्ट हो गयी। यही तो विज्ञान नहीं चाहता था। पर कला तो जैसे दीवानी हो गई थी।

फल दे देने के बाद आम के वृक्ष की जो नुची खुची दशा होती है, वही दशा कला की थी। पर उसे अब अपनी ओर देखने की जैसे फुरसत ही नहीं थी। वह बेबी में इस तरह तन्मय हो गई थी, जैसे अपना अस्तित्व ही खो बैठी हो। विज्ञान ने कई दफे समझाया कि अब भी वह सँभल जाय, तो कुछ बिगडा नही है। बच्चे की देख-रेख के लिये एक आया रख ले वह उसकी देख-भाल कर लेगी। वह अब अपने को देखे, अपने स्वास्थ्य की चिन्ता करे। पर कला ने एक न सुनी। उसने दृढ शब्दों में कहा—"मैं बच्चे की जननी ही नहीं, माता भी बनना चाहती हूँ। जननी बनने में जो कष्ट होता है, उसी का मीठा फल तो माता बनने में मिलता है। अब जननी का सारा कष्ट झेल लेने के बाद मातृत्व के सुख से वञ्चित रहना कौन अभागी नारी चाहेगी?"

विज्ञान उसकी बात सुन कर झुँझला उठा, पर करता क्या? कला से तो वह उसी दिन हार मान गया था, जिस दिन अपनी दुर्बलता के कारण उसकी सीमा में बिना किसी शर्त के बँधने को तैयार हो गया था। फिर भी उसने समझाया—"कला, यों जान-बूझ कर अपने जीवन सुख को नष्ट करना नादानी के सिवा कुछ नहीं। आधुनिक विज्ञान के उपादानों का उपयोग न कर, सोलहवी सदी की नारी की तरह बच्चे में अपने को खपा देना निरी मूर्खता है। यह युग बच्चों के पालन-पोषण के लिये माँ का

रवादार नहीं। उसके पालन-पोषण के लि वेज्ञानिक ढग से ये ट्रेन्ड दाइयॉ, भाँति-भाँति के भोज्य पदार्थ, और कितनी ही सस्थायें है। नारी को यह न भूलना चाहिये कि पुरुष के सामने उसका प्रेयसी रूप ही प्रतिष्ठित हो सकता है। माँ बनने पर भी उसके लिये इस रूप को कायम रखना उतना ही जरूरी है, जितना माँ बनने के पहले।"

"सो तो ठीक कहते हो, पर ऐसा एक माँ समझ ले, तो वह रक्त मास का प्राणी न होकर, एक ऐसी मशीन हुई, जिसका काम यांत्रिक रूप से केवल बच्चा पैदा करना भर है। यदि तुम्हारा विज्ञान माँ-बच्चे के सम्बन्ध को मशीन और उससे बनाये गये कपडे का ही सम्बन्ध समझता है, तो मैं भगवान से प्रार्थना करूँगी, कि अगले जन्म में वह तुम्हें माँ बनाये। तभी तुम इस सम्बध को ठीक ठीक समझ सकोगे। तुम्हारे जादू के प्रभाव से कभी मैं भी सब माँओं को घृणा की दृष्टि से देखती थी, बच्चों के नाम से भी चिढती थी। समझती थी कि नारी की पूर्णता उसके प्रेयसी-रूप में ही है। यौवन और सौन्दर्य का उपभोग ही जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य है। पर अब समझा है कि वह रूप केवल छलना है। वह भोग केवल दुर्बलता है। उसके अन्त में, जब आयु के प्रभाव से लाख सिमेटने पर भी युवती देखती है, कि उसके रूप और सौन्दर्य का कुछ-न-कुछ प्रतिदिन नष्ट हुआ जा रहा है और एक दिन उसे सचमुच यह भास हो जाता है कि वह बूढी हो गई, तो उस समय जब वह पीछे मुड कर अपने गुजरे जीवन पर दृष्टि-विक्षेप करती है, तो एक व्यर्थ के भोग-विलास के सिवा उसे कुछ भी दिखाई नहीं देता। तब क्या उसके जी में यह न आता होगा कि काश, उस भोग-विलास के सिवा कुछ ऐसा भी होता, जिसे वह अपने जीवन की प्राप्ति समझती। उस समय वह समझ पाती है कि

किस प्रकार अपने रस लोलुप प्रेमी के हाथों बुरी तरह मूर्ख बना कर ठगी गई है। आज माँ बनने के बाद तुम मुझे भी उसी प्रवंचना में घसीटना चाहते हो ? तुम चाहते हो कि मैं अपने कलेजे के टुकड़े को दूसरे के हाथों में सौंप पुनः प्रेयसी बन तुम्हारे भोग-विलास का साधन मात्र रह जाऊँ ? नहीं, नहीं, मुझसे अब यह सब न हो सकेगा, विज्ञान।" कला ने सिर हिला कर कहा।

विज्ञान सकते में आ गया। इस प्रकार की कड़वी बातें उसने कला से कभी न सुनी थीं। उसे सचमुच अपने पर सन्देह हो उठा। तो क्या सचमुच अब तक वह कला को ठगता ही रहा है, उसे अपने स्वार्थ, अपने भोग विलास का साधन बना उसके जीवन को व्यर्थ ही करता रहा है ? पर जिन्दगी की वह रंगीनी वह सुख, वह

"यों क्या सोच रहे हो ?" कला ने उसे विचार मग्न देख कहा—"मैं नारी हूँ, कला हूँ, माँ हूँ। शरीर का खून, हृदय का रस और आत्मा की निरन्तर साधना से मानवता की सृष्टि और पालन मेरा काम है। तुम पुरुष हो, विज्ञान हो, पिता हो। व्यर्थ भोग-विलास, कृत्रिम जीवन, स्वार्थमय आनन्द तुम्हारा उद्देश्य है। प्रेम, सौन्दर्य सभ्यता और मानवता मेरी गोद में पलते हैं। जीवन को यान्त्रिक बना इनको नष्ट करना तुम्हारा काम है।"

विज्ञान कला का मुँह तकता रह गया। कला अपने बेबी में व्यस्त हो उठी। अपनी गोल गोल आँखों को नचाता मानव का वह नन्हा पुतला कभी माँ को और कभी पिता को यों देख रहा था, जैसे वह यह जानने की चेष्टा कर रहा हो कि कौन उसका पालक है और कौन उसका

स्मारक

तभी से बूढ़ा पागल हो गया। घर में विधवा बहू की सूखी आँखों को अपनी लाल-लाल भयावनी आँखों से, जब तक वह घर में रहता है, घूरता रहता है। घूरते घूरते अचानक जोर-जोर से बिलख बिलख कर रो पड़ता है। बूढ़ी आँखों से आँसुओं की धारें बहती देख, विधवा के दिल के जख्मों के टाँके टूट जाते हैं। उसकी सूखी आँखों में बड़ी कठिनाई से सूखे मानस के बचे-खुचे आँसू के कण निचुड़ कर, अँधेरी रात में बालू के कण की तरह चमक उठते हैं। वह हृदय की असह्य पीड़ा को लिये, बूढ़े के सामने से हट जाती है। तब बूढ़ा अचानक ही भाग कर, घर के बाहर आ गली में खड़ा हो, दोनों हाथों की मुट्ठियाँ हवा में उठा, गले का सारा जोर लगा चीख पड़ता है—"इन्कलाब जिन्दाबाद! इन्कलाब जिन्दाबाद!"

बूढ़े की परिचित आवाज सुन, पास-पड़ोस के लड़के अपने-अपने घर से भरभरा कर निकल पड़ते हैं, और बूढ़े को चारों ओर से घेर, उसी की तरह हवा में मुट्ठियाँ उठा-उठा कर, गला फाड़-फाड़ चिल्ला उठते हैं—"इन्कलाब जिन्दाबाद! इन्कलाब जिन्दाबाद!"

बूढ़ा छाती का पूरा जोर लगा-लगा, हुमक हुमक कर, हवा में मुट्ठियाँ लहराता, इन्कलाब के नारे लगाता, आगे बढ़ता है, और लड़कों का नारे लगाता झुण्ड उसके पीछे-पीछे। गाँव की गली-गली, घर-घर, कण-कण को वह उन नारों से गुँजा देता है। गाँव के सारे लड़के उसके झुण्ड में मिल जाते हैं, और

लोग अपने-अपने घरों के द्वार पर आ-आ, उस दृश्य को आँखों में आँसू और हृदयों में आहों का धुआँ भरे देखते हैं। बीच बीच में कभी कभी बूढ़ा लड़कों के झुण्ड की ओर अचानक मुड़ कर, अपने दोनों हाथों को बन्दूक की तरह तान कर बोल पड़ता है—"ठॉय ! ठॉय !" लड़के ठिठक कर, पैर जमा खड़े हो, सीना तान-तान कर, खड़े हो जाते हैं। और सीनों पर मुट्ठियाँ मार मार, आँखों में बलिदानी उमंग का रंग ला, चिल्ला पड़ते हैं—"मारो ! मारो !"

पागल बूढ़ा ! पागलपन का उसका नाटक ! पर दरवाजों पर खड़े लोगों के रोंगटे क्यों खड़े हो जाते हैं ? क्यों उनकी आँखों में एक आशंका उभर कर थर्रा उठती है ?

पहले-पहल बूढ़े ने जब इस तरह किया था, तो लड़के भय के मारे भाग खड़े हुए थे। तब बूढ़े की धँसी आँखें मारे क्रोध के बाहर निकल आयी थीं। उसने चीख कर कहा था—'बुजदिलो तुम मेरे कदमों पर चलने के काबिल नहीं ! तुम्हें यह इन्कलाब नारा लगाने का हक नहीं ! तुम कायर हो, तुम बुजदिल हो ! कायरों और बुजदिलों के लिये इन्कलाब नहीं ! इन्कलाब मेरे बेटे-जैसे बहादुरों और जाँबाजों के लिये है, जो हँसते हँसते दुश्मन की गोलियों को सीनों पर ले लेते हैं, जो खुश-खुश मुल्क पर कुरबान हो जाते हैं !" और मारे घृणा के उसका चेहरा विकृत हो, बीभत्स हो उठा था।

लड़कों ने उसकी बातें सुनी थीं। समझी भी थीं, यह कैसे कहा जा सकता है ? नादान बच्चे ! गुड़ियों और घरौंदों से खेलने वाले बच्चे ! गोलियों और सीनों का खेल वे क्या जानें ? मुल्क और कुरबानी का खेल क्या जानें ? वे सहमी आँखों से उसकी ओर देखते भर रह गये थे। तभी उनमें से एक बड़े, कुछ समझदार लड़के ने आगे बढ़, लड़कों को सम्बोधित

कर कहा था—"नया खेल! बन्दूकों और सीनों का खेल! मुल्क और कुरबानी का खेल! आओ, आओ! हम यह नया खेल खेलें!" कह कर, वह सीना ताने अकड़ कर चलता हुआ आगे बढ़ा था, और लड़कों का झुण्ड उसके पीछे उसकी देखा देखी सीना ताने, बूढ़े ने आँखें फाड़ कर, सामने आते हुए लड़कों को सीना ताने देखा तो जोश से भड़क उठा। चीखा—"शाबाश! शाबाश! मेरे मुल्क के बहादुर बच्चो, शाबाश!" और उसकी आँखें एक आश्चर्यजनक खुशी से चमक उठी थीं। उसने दुगुने जोश से नारा लगाया था—"इन्कलाब!"

और लड़कों ने उससे भी दुगुने जोरों से कहा था—"जिन्दाबाद!"

उस समय जमीन काँप गई थी। आसमान लरज उठा था। दरवाजे से देखती अनगिनत आशंका-भरी आँखों में एक प्रश्न काँप कर पूछ गया था, 'यह कैसा खेल? यह कैसा नाटक?'

तभी से पागल बूढ़े के पागलपन का यह खेल चल रहा है, यह नाटक चल रहा है। और लोगों की आशंका भरी आँखों में वह प्रश्न काँप काँप पूछ जाता है, 'यह कैसा खेल? यह कैसा नाटक'?' और उत्तर में उस बूढ़े की कही हुई बात ही उनके कानों में गूँज उठती है, 'इन्कलाब मेरे बेटे जैसे बहादुरों और जाँ-बाजों के लिये है, जो हँसते-हँसते दुश्मन की गोलियों को सीनों पर ले लेते हैं, जो खुश-खुश मुल्क पर कुरबान हो जाते हैं!' तो क्या यह पागल बूढ़ा चाहता है, कि उसके बेटे की ही तरह ये नन्हें मुन्ने लाडले भी और उनकी आँखों के सामने बूढ़े के बेटे, रनजीर, की खून से लतपथ लाश नाच उठती है, उसके साहसपूर्ण बलिदान

अगस्त, सन् १९४२! क्रान्ति के दिन! बलिदान के दिन! ग्यारह अगस्त। सूर्योदय का समय। थाने के सामने गड़ढ़

कोमाँखों के हजारों नौजवान समुद्र की तरह मर्यादा में बंधे, प्रगति द्वारा सीमा उल्लंघन कर सारे संसार को जल-प्लावित करने को उद्यत। आँखों से लपटें निकल रही हैं। पुतलियों की चमक में बिजलियाँ कौंध रही हैं। भौंहों के बल में खंजर लपक रहे हैं। जोश से चेहरे तमतमा रहे हैं। सीनों की धड़कनों में विद्रोह छटपटा रहा है। उबलते खून की तेज रवानी से फूल आई रगों की फड़कनों में विस्फोट मचल रहा है। काले जुल्मों से छलनी हुए हृदयों में बदले की भावना भड़क रही है। अपमान और अत्याचार की भट्टी में भुनते शरीर सब्र खो रहे हैं। नारों के गर्जन से दिशायें फट रही हैं। हवा में तनी हुई फौलादी मुट्ठियाँ आजादी के हत्यारों को गर्दन तोड़ देने को उतावली हो रही हैं। खून-भरे नेत्र की तरह आकाश से घूरते नये सूर्य की लाल किरणों के लोहित प्रकाश में अनगिनत सिर एकरंगे हो, क्रान्ति की असंख्य लपटों की तरह गुलामी के गढ़ों को निगल जाने को लपलपा रही हैं। पर कदम रुके हुए हैं। बापू की अहिंसा और सत्याग्रह की मर्यादा जंजीर बन उनके पैरों को बाँधे हुए है। रनवीर, मंडल के सभापति, की आज्ञा पहाड़ की तरह उनके सामने खड़ी है। आजादी के वीर सत्याग्रही अनुज्ञा का उल्लंघन ही कैसे कर सकते हैं ?

थाने की छत पर दारोगा और नायब खड़े हैं। उनके आगल-बगल एक दर्जन किरचें चमक रही हैं। सशस्त्र पुलीस वालों की अँगुलियाँ राइफलों के घोड़ों पर काँप रही हैं। उनकी आँखों में खौफ थर्रा रहा है। जिन्दगी और मौत का सवाल है। इने-गिने राइफिल और सामने हजारों का मजमा, क्षुब्ध सागर की तरह अपनी विकराल लहरों की चपेट में सब-कुछ आत्मसात कर लेने को उद्यत।

रनवीर ने आगे बढ़, सिर उठा कर दारोगा की ओर देखने

हुए कहा—"आप नीचे उतर कर जनता से माफी माग लें। आपने हमारे झण्डे, राष्ट्र के तिरंगे का अपमान किया है। जनता क्षुब्ध है। वह अपने प्राणों से भी प्यारे झण्डे का अपमान किसी भी हालत मे बरदाश्त नही कर सकती। वह उसके अपमान का बदला अपने खून की आखिरी बूँद तक दे, चुकाने को तैयार है। आप झूठे और मक्कार हैं। जिस झण्डे को आपने कल इन सब के सामने सलामी दी, उसी का अपने बूटो से, सशस्त्र पुलीस की कुमक पहुँच जाने पर, रौंद कर आपने हमारे राष्ट्रीय झण्डे, हमारी जनता, हमारे राष्ट्र, हमारा कांग्रेस के प्रति अपनी गद्दारी का परिचय दिया है। गद्दारो की सजा मौत है। लेकिन हमारे नेताओं ने जनता को गद्दारो के लिये यह सजा देने का अधिकार नहीं दिया है। फिर भी क्रुद्ध जनता किस सीमा तक बढ सकती है इसकी कल्पना आप इस मजमे को देख कर सकते हैं। आपको अपने सिपाहियों और राइफिलों की ताकत का बहुत गलत अन्दाजा है। आप भला चाहते हैं, तो नीचे उतर कर जनता से माफी माँग लें। आप हिन्दुस्तानी होने के नाते हमारे भाई हैं। आपको क्षमा कर देने के लिये मै जनता से सिफारिश करूँगा।"

"नहीं, नहीं हम गद्दार के खून से अपने झण्डे पर पड़े अपमान के धब्बों को धोयेंगे।" हजारों कड़कती आवाजें मजमें से एक साथ गरज उठीं।

थाने की दीवारों की ईंट-ईंट लरज उठी। दारोगा, नायब और सिपाहियों की भयभीत आँखों के सामने फैली हुई मजमे की लाल लाल, तरेरती आँखें मौत की आँखों की तरह शरीर की बोटी-बोटी को सर्द करती चमक गईं।

"रनवीर जी" दारोगा के सूखे गले से जगह-जगह अटकती, काँपती आवाज आई—"आप देख रहे हैं न मजमे को! मुझे

डर लग रहा है। मैं उनके सामने नहीं जा सकता। आप इन्हें जाने को कह दें। फिर आप जो कहेंगे, मैं करने को तैयार हूँ।"

"नहीं, नहीं, हम गद्दार का सिर तोड़े बिना नहीं जा सकते।" मजमा चीख उठा। मुट्ठियाँ हवा में लहरा उठीं। नथुने फड़क उठे। सीने फूल उठे। पीछे से जोर हुआ। मर्यादा के कूल टूटते से लगे।

रनबीर ने मजमे की ओर मुड़ कर कहा—"आप शान्त रहें।" फिर दारोगा की ओर घूम कर कहा—"मैं जनता को समझता हूँ। भोली भाली देहाती जनता जितनी जल्द चकमे में आ जाती है, विश्वासघात करने पर उतनी ही जल्द क्षुब्ध भी हो उठती है। आपने उनके साथ विश्वासघात किया है। वे क्षुब्ध हैं। उनकी क्षुब्धता का क्या परिणाम होगा, मैं जानता हूँ। फिर भी मेरी बात मान कर, वे इस नर्म शर्त पर आपको माफ कर देने का मुझे वचन दे चुके हैं। अब वे आपके चकमे में नहीं आ सकते। एक बार के लिये अनुभव को वे दुहराना नहीं चाहते। आप मुझ पर विश्वास कर, नीचे आ, इनसे माफी माँग लें। वरना हमें जो करना होगा, हम करेंगे। आज इस झण्डे को हम थाने की छत पर, जहाँ आप अपनी पूरी ताकत लिये खड़े हैं, फहरायेंगे। और देखेंगे, कि किसकी शक्ति है, जो हमें रोकती है, किसकी हस्ती है, जो हमारे झण्डे पर हाथ लगाती है। इन्क़लाब।"

"जिन्दाबाद।" मजमे के चिग्घाड़ से वायुमण्डल के तनाव में जैसे चीरे पड़ गये। दिशायें काँप उठीं। जमीन दहल गई। पीछे के नौजवानों ने जोर मारा। विकराल लहरों की तरह जनता आगे फटती-सी लगी। अब क्या होगा, क्या होगा?

रनबीर जानता था, कि ऐसे में क्या होता है। एक हाथ

जनता की ओर उठाये, मुड़ कर वह आँखें उठा, दारोगा की ओर देख कर, कुछ कहना चाहता था कि देखा, उधर राइफिलें तन गई थीं। दारोगा और उसके सिपाहियों की कम्बख्ती उनके सिर पर मँडरा रही थी। वे भूखे घायल शेरों को छेड़ने पर उतारू थे। दारोगा जानता था, कि ये नौजवान नहीं, शोलों के पुतले हैं, कहर के टुकड़े हैं, और उन्हें छेड़ने का क्या मतलब होता है। पर अब बात बढ़ गई थी। उसके चारों ओर मौत-ही-मौत खड़ी दिखाई देती थी। इस हालत में वह एक बार बचने की कोशिश कर देखने से क्यों चूके? शायद उसके पिछले अनुभवों ने उसके कानों में चुपके से कहा कि 'हर बार की तरह ये अबकी भी गोली की आवाज सुन भाग खड़े होंगे।' उसे क्या मालूम था, कि अब की नौजवानों का मजमा गोली क्या एक बार वज्र से भी टक्कर लेने को उधार खाए बैठा था। उसने जैसे सामने मुँह खोले आते हुये क्रुद्ध शेर को देख, आँखें मूँद कर, गोली चलाने का हुक्म दे दिया। गोलियाँ तड़ातड़ चलने लगीं।

रनवीर के लिये अब कुछ सोचने-समझने का मौका ही कहाँ रहा? गोलियों की बौछार में अहिंसा की मर्यादायें जल कर भस्म हो गईं। क्षुब्ध जनता खूँख्वार हो उठी।

रनवीर ने नारा लगाया—"इन्कलाब!"

और 'जिन्दाबाद' का नारा दे जनता ने मुक्त रूप से पागल हो, थाने पर धावा बोल दिया। थाने को चारों ओर से घेर, ईंट-पत्थर जो भी उनके हाथ लगा, उसीसे वे थाने की खुली छत पर खड़े दारोगा और सिपाहियों को निशाना बनाने लगे। एक दर्जन सिपाही, और अनगिनत जनता चारों ओर से प्रहार करती! फिर भी गोलियाँ चलती रहीं, ईंट पत्थर बरसते रहे। सब जैसे उस समय अन्धे हो गये थे। अपनी बगल में देखने

तक की फुरसत किसी को न थी। कौन गिर रहा है, किसे चोट आई है, कहाँ खून की धार बह रही है, किसी को कुछ पता न था।

करीब पैंतालीस मिनट तक ऐसे ही चलता रहा। आखिर थाने की पूरी छत ईंटों और पत्थरों से पट गई। अब कोई गिर उस पर दिखाई न दे रहा था। राइफिलें शान्त हो गई थीं। रनवीर ने विजय का नारा लगाया। जनता ने विजयोल्लास में पागल हो, गज गज भर उछल कर, विजय के नारों की गूंज से आसमान का कोना-कोना भर दिया। वायुमण्डल खुशियों के हलकोरों में झूम उठा। ऊपर आकाश का सूर्य मुस्करा रहा था।

रनवीर को तब अपने लोगों की चिन्ता हुई। उसने घायलों को ढूंढने का आदेश दिया। लोगों को जैसे अब ख्याल आया, कि थोड़ी देर पहले उन पर गोली भी चली थी।

ढूंढने पर मालूम हुआ, कि जहां वे पहले खड़े थे, वहां करीब अस्सी नौजवान घायल हुए थे। उनमें भी किसी को सख्त चोट नहीं लगी था। शहीद कोई नहीं हुआ। ऊपर खुली छत से, ईंटों और पत्थरों के निशानों से बच कर, नीचे जनता पर गोली चलाना असम्भव था। यह बात दारोगा के ख्याल में नहीं आई थी। और जनता को ही यह बात कहाँ मालूम थी।

सब साथी सुरक्षित है, यह जान कर विजय का उल्लास और बढ़ गया।

"अब थाने की छत पर झण्डा फहराया जाय। सभापति की बात पूरी हो!"—जनता चिल्ला उठी।

अन्दर से बन्द थाने का फाटक टूटते देर न लगी। आगे-आगे रनवीर तिरंगा हाथ में लिये, और उसके पीछे-पीछे जनता। छोटी छत पर जितने समा सकते थे, चढ़ गये। बाकी

लोग नीचे थाने के सामने खड़े हो, झण्डा-अभिवादन के लिये खड़े हो गये।

छत पर सारे सिपाही और दारोगा ईंट-पत्थरों की क़ब्र में दबे पड़े थे। न एक भी आह, न एक भी कराह। सब शान्त।

"इनकी खबर हम झण्डा-अभिवादन के बाद लेंगे," रनवीर ने कहा, और झण्डा लिये छत के सामने बढ़ गया।

लोग झण्डा-अभिवादन के लिये एकाग्र चित्त हो, अदब से खड़े हो गये।

रनवीर छत की मुँडेर से झण्डे का डंडा बाँध रहा था। और लोग देश प्रेम के नशे में झूमते हुए, तिरंगे पर दृष्टि टिकाये, गा रहे थे—

'विजयी-विश्व तिरंगा प्यारा,
झण्डा ऊँचा रहे हमारा!'

झण्डा लहरा रहा था। वातावरण झूम रहा था। सूर्य की चमकीली किरणें झण्डे पर पड़ मुस्करा रही थीं। लोगों की अध-मुँदी, ध्यानावस्थित आँखों में राष्ट्रीयता का अमृत पलकों तक उमड़ कर छलकने को उद्यत हो रहा था। होंठों से आत्मा के अनुराग से फूटा स्वर निकल रहा था—

'इसकी शान न जाने पाये'

रनवीर ने झण्डे को बाँध कर, सिर उठा, दुहराया—'इसकी शान न जाने पाये'

लोगों ने जोश में लहराते झण्डे की ओर हाथ उठा कर गाया —'इसकी शान न जाने पाये,'

रनवीर ने छाती ठोंक कर, आगे गाया—'चाहे जान

सहसा एक जोर का धड़ाका हुआ। एक बिजली-सी रनवीर की छाती के पास कौंध उठी। रनवीर का छाती ठोंकता हाथ छाती पर ही दबा रह गया। उसके मुँह से एक आह निकली,

और उसने झण्डे के डण्डे भहरा पर कर गिर, दोनों हाथों से उसे थाम लिया। लोग एकाएक बेसुध रो हो-हो उसकी ओर लपके, कि कमजोर डंडा चरचरा कर टूटा, और रनवीर झण्डे को लिये-दिये निचे गिरा। नीचे के लोग उसकी ओर आशंका भरी आँखों से देख रहे थे। उन्होंने रनवीर को जमीन पर गिरने के पहले ही बीच में फूल की तरह लोक लिया। रनवीर की छाती से खून की धार बहती देख, लोगों के मुँह से एक आह में लिपटी हुई चीख निकल गई।

ऊपर के लोगों ने गुस्से में भर, धुयें के बादल के नीचे ईंट-पत्थरों में दबी लाशों की ओर देखा। उधर के कोने में ईंटों के बीच से दो खून की धारों में डूबी हुई आँखें झाँक रही थीं, और उसके जख्मी हाथ की पिस्तौल की नली ऊपर उठी हुई साफ दिखाई दे रही थी। लोगों को पहचानते देर न लगी, कि वह दारोगा था। लोग उसकी ओर लपके। उनको अपनी ओर आते देख, उसने एक जोर का अट्टहास किया, और दूसरे ही क्षण अकड़ कर लम्बा हो गया। उसके ऊपर पड़े ईंट पत्थरों में एक हल्की खड़खड़ाहट हुई, और उसने दम तोड़ दिया।

ईंटें हटा उसे देख कर, एक ने कहा—"मर गया गद्दार! मगर इन गद्दारों की लाश भी आग लगा दो थाने में! भून दो इन गद्दारों की लाशों को! इनकी लाशें भी भारत माता की छाती पर गद्दारी के पाप का बोझ बनी रहेंगी!"

देखते-देखते लपटें लपलपा उठीं। पाँच-छे आदमी घायल और बेहोश रनवीर को फूल की तरह उठाये, वहाँ से दो कोस पर परगने के अस्पताल की ओर जा रहे थे। उस अवस्था में उसे उसके घर ले जाना उचित न था। उन्होंने एक बार पीछे की ओर मुड़ कर देखा, थाने के ऊपर रंग रंग के धुये और लपटें हू हू कर उठ रही थीं। उन्हें लगा, जैसे राष्ट्र का तिरंगा ही

उन धुओं और विकराल लपटों का रूप धारण कर, उन जुल्म के अड्डे को जलाता आकाश में लहरा रहा हो। उनके मुँह से से आप ही-आप निकल गया—"क्रुद्ध जनता आज गुलामी के चिन्हों को एक-एक कर मिटा देगी, आज तक किये गये अत्याचारों का बदला ले कर ही दम लेगी, आजादी के हत्यारों को लपटों में भून डालेगी, देश पर जमी सत्ता की जड़ हिला कर छोड़ेगी, और जब तक इस जालिम हुकूमत के शव को खड़े-खड़े शोलों में न जला देगी चैन न लेगी।"

एकलौते बेटे का समाचार सुन बूढ़े पिता का मस्तिष्क सुन्न हो गया। वह उसी क्षण अस्पताल की ओर पागल की तरह दौड़ पड़ा। उसकी सहायता के लिये तीन-चार युवक भी उसके पीछे पीछे हो लिये। रनवीर की बहू को जब यह खबर मिली, तो उसने निस्सीम निराशा की दृष्टि से एक बार अपने सामने खड़े लोगों को देखा, और दूसरे ही क्षण कटे धड़ की तरह जमीन पर गिर पड़ा।

अस्पताल पहुँचने पर डाक्टर से मालूम हुआ, कि उसके छोटे अस्पताल में सांघातिक रूप से घायल हुए रनवीर की चिकित्सा होना असम्भव था। इसलिये उसने उसे सदर के अस्पताल में ले जाने की राय दी। लोग रनवीर को लेकर वहाँ गये हैं। घाट पर वे नाव लेंगे, और नाव से ही बीस मील की दूरी तै कर सदर अस्पताल जायँगे। और कोई रास्ता नहीं है वहाँ जाने का। रेल की पटरियाँ उखाड़ दी गई हैं। स्टेशन जला दिये गये हैं। कच्ची सड़क के पुल तोड़ दिये गये हैं।

सुन्न बूढ़े के साथ साथ सब घाट की ओर चल पड़े। वहाँ मालूम हुआ, कि आध घंटे पहले रनवीर को लोग ले गये हैं। उन्होंने भी नाव ले, चलने को तै किया, कि एक मल्लाह ने दूर नदी की धार में देखते कहा—"वही भोलवा की नाव लेकर तो

वे लोग गये थे। अब तो इधर ही लौटती दीख रही है। थोड़ी देर तक आप लोग यहीं बैठें। वह नाव वापस आ रही है।"

नाव वापस आ रही है! क्यों? क्या रनवीर राव का हृदय आशंकाओं से भर गया। बूढ़ा खड़ा खड़ा एकटक आती हुई नाव को देख रहा था। उस समय उसके चेहरे की झुरियों में कैसे कैसे भाव करवटें ले रहे थे, उसके कभी कभी फड़क जाते होठों पर हृदय की किस व्यथा का आवेग तड़प उठता था, उसकी सूखी, धँसी आँखों में आशा और निराशा के कैसे-कैसे रंग उभर मिट रहे थे, इसका वर्णन यदि क्षण क्षण उसका चित्र खींचने वाला कोई कैमरा होता, तो शायद उन चित्रों की जबानी हो सकता।

रनवीर की छाती में कई गोलियाँ लगी थीं। जब से वह गिरा था, एक क्षण को भी वह होश में न आया था। एक बार भी उसकी पलकें न हिली थीं। उसके साथी परगने के डाक्टर की बाँधी पट्टी पर पाँच-पाँच मिनट में अपने अँगोछे और धोती के टुकड़े बदल-बदल कर बाँधते जा रहे थे। पर खून इतने जोर से निकल रहा था, कि पट्टी के ऊपर बाँधे कपड़े भीग भीग जाते थे।

नाव पर उन्होंने चार मल्लाह रखे थे ताकि जल्द-से-जल्द सदर अस्पताल पहुँच जायँ। बड़ी तेजी से नाव बरसात की उमड़ी नदी की धार में जा रही थी, कि सहसा रनवीर के शरीर में एक कँपकँपाहट हुई। उस पर टिकी सबकी आँखों की पलकें एक क्षण को झपक सी गईं। अब, अब होश आयेगा शायद। उत्सुक हो वे उसके हाथ, पैर सिर को हाथों से सहलाने लगे। रनवीर की स्याह पड़ी पलकें हिलीं, काँपीं, फिर धीरे-धीरे खुलने लगीं। उसकी पथराई आँखों की स्थिर पुतलियों को देख, सब का कलेजा धक से कर गया। पुतलियों के निस्पन्द हो जाने के

कारण ही शायद् रनधीर ने धीरे से सिर घुमाकर, एक बार पश्चिमी आकाश में डूबते हुए सूर्य की ओर देखा फिर सिर ही घुमाकर उनके आगने लीला और देखा। साथी अपने हृदय की धड़कन रोके, आँखों में आशंका लिये, उसे अपनक आँखों से देख रहे थे। उस वक्त तूफानी, जोर शोर कर बहती नदी भी जैसे शान्त हो गई थी, सरसर बहती हवा भी जैसे ठिठक गई थी, धारा के शोर से गूँजता वायुमण्डल भी जैसे शान्त हो गया था। जैसे प्रकृति भी रनधीर की ओर ही टकटकी में आ, एकटक निहार रही हो।

रनधीर के सूखे होठों में हरकत हुई। एक ने नदी से पानी ले, टप टप उसके होठों पर चुआ दिया। रनधीर ने सूखी जबान को जैसे जोर लगा कर, निकाल कर होठों पर फेरा। सहसा उसकी आँखों की पुतलियाँ एक बार जोर से चंचल हो चमक उठीं। होठ जोर से काँपने लगे, जैसे वह कुछ बोलने का प्रयत्न कर रहा हो, पर सूखे गले से आवाज न निकल रही हो। फिर लगा, जैसे जोर लगा कर, वह खाँस कर गला साफ करना चाहता हो। गले में सुरसुराहट हुई। फिर जैसे गले के तारों में खरखराहट हुई। वह धीरे-धीरे साँस की ही आवाज में, आँखों में ऐसा भाव लिये, बोलने लगा, जैसे वह जो-कुछ कह रहा है, वह उसके जीवन की आखिरी बात हो जिसको कहे बिना वह चैन से मर भी नहीं सकता, जैसे जब से वह बेहोश हुआ है, तभी से वह इसे कहने को तड़प रहा था, जैसे उसे ही कहने के लिये अब तक उसके प्राण, उसकी आत्मा छटपटाती रही हो।

साथियों ने साँस रोक, कान उसके मुँह पर टिका दिये।

रनधीर कह रहा था—"ह' मा रा तिरंगा "

एक साथी ने उसका मतलब समझ कर, कहा—"हाँ,

हमारा तिरंगा गगने पर गड़ गया! वह आज जिस आग, शोलों और लपटों का रूप धारण कर फहरा रहा है उससे वह थाना ही नहीं, देश के सारे थाने, जेल, चौकियाँ, कचहरियाँ खजाने, स्टेशन जल रहे हैं! देश भर में फैले हुए हुकूमत के रेल, तार डाक और सड़कों के जाल, जिनमें जकड़ा हुआ गुलाम देश दम तोड़ रहा है, एक-एक कर कट रहे हैं, नष्ट हो रहे हैं! हुकूमत की पाताल तक गड़ी जड़ें आज हिल रही हैं! वह आज नहीं, तो कल, कल नहीं, तो परसों अवश्य गिर जायेगी! हमें अब आजाद होने से कोई नहीं रोक सकता! अब हम आजाद हैं, आजाद!"

"आजाद!" रनवीर जैसे उखड़ते प्राणों का जोर समेट कर, जोर से बोल पड़ा। उसकी पथराई आँखें मुस्करा उठीं। चेहरे पर असीम उत्फुल्लता की आभा चमक गई। पेशानी दमक उठी। उसने एक बार फिर जैसे निकलते प्राणों को शक्ति लगा कर रोका, और चिल्ला उठा—"इन्कलाब जिन्दाबाद! वन्दे!"

"मातरम्!" साथियों ने पूरा किया।

और रनवीर के प्राणों में जैसे पंख लग गये। वे नीड़ छोड़, मुक्त पछियों की तरह खुश खुश जैसे उड़ चले क्षितिज की ओर। साथियों के सामने पड़ा शान्त शहीद मुस्करा रहा था। उसके चेहरे से शहादत की हँसती किरणें फूट रही थीं, जो साथियों की आँसू भरी आँखों में चमक कर जैसे कह रही थीं, 'साथियो, यह रोने का अवसर नहीं, खुश होने का वक्त है! शहादत बड़ी कीमती चीज है! देश के दीवाने हर कीमत पर इसका सौदा करने को तड़पते रहते हैं! पर यह कितनों को मिली है?'

सूरज का प्रकाशहीन गोला नदी में गोता लगा गया।

आकाश में उड़ते रंग-बिरंग बादलों के मिस जैसे आकाश के देवताओं ने शहीद का शव ढँकने के लिये रंग-बिरंग की रेशमी चादरें भेजी हों। उफनती नदी की लहरें उछल उछल कर जैसे अपना बीआरो रा शहीद का मुँह धोने को उतावली हो रही हों। हवा के नरम झोंके जैसे शहीद के शरीर में चन्दन का लेप लगा रहे हों।

नाव लौट पड़ी। साथी वन्देमातरम् का गान धीमे-धीमे गा रहे थे।

घाट पर खड़े बूढ़े और दूसरे लोग नाव पर सिर झुकाये बैठे रनवीर के साथियों को देख कर ही जैसे सब-कुछ समझ गये। नाव अभी पानी में ही थी, कि बूढ़ा पागल सा उसकी ओर दौड़ पड़ा। युवकों ने नाव से उतर कर, उसे सँभाला। आँखों में असीम व्याकुलता लिये, आकुल कण्ठ से बूढ़ा चीख पड़ा --"मेरा बेटा ?"

"बाबा, आपका बेटा मातृभूमि पर शहीद ...."

"बेटा! बेटा!" व्याकुलता और व्यथा के आवेग में चीखता बूढ़ा युवकों का पकड़ को छुड़ा, नाव पर चढ़ गया, और बेटे की लाश पर सिर पटक, बिलख-बिलख कर फूट फूट कर रो पड़ा।

काफी देर के बाद लोगों ने उसे उठाया। बूढ़े की आँसू बरसाती आँखों का आश्चर्यजनक भाव देख कर लोगों का माथा ठनका। वे उसे समझाने लगे—"बाबा, आपको रनवीर की शहादत पर गर्व होना चाहिये! ऐसा वीर पुत्र क्या सभी को मिलता है? मरना तो एक दिन सभी का होता है, पर इस तरह की अमर मृत्यु किसी को कहाँ प्राप्त होती है? वह हँसते हँसते, खुश-खुश गया है, बाबा! भारत माता के चरणों में अपना बलिदान दे, वह अपने साथ ही आपको, आपके कुल

को अमर कर गया ! देश की आजादी की लड़ाई के इतिहास में उसका नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायगा ! हमें उसकी शहादत पर गर्व है, देश को उसकी शहादत पर गर्व होगा, बाबा ! काश, आपने मरते समय का उसका मुस्कराता चेहरा उसका असीम रूप देखा होता ! काश, उसकी उफुल्लता की वह अमर वाणी आपने सुनी होती, तो आप इस तरह न रोते, इस तरह न तड़पते !"

बूढ़े की आँसुओं में तैरती पुतलियों में कम्पन हुआ। उसने भरे गले से पागल की तरह उसकी ओर देखते पूछा—"क्या कहा था मेरे बेटे ने ?"

"कहा था, 'इन्कलाब जिन्दाबाद ! वन्देमातरम् !' और उसकी यह आखिरी अमर निशानी है !"—कह कर, युवक ने अपने अँगाछे से खोल कर, खून के धब्बों से भरा तिरंगा उसकी ओर बढ़ा दिया।

बूढ़े ने झपट कर उस झण्डे को ऐसे हाथ में ले लिया, जैसे वह संसार में उसकी जान से अधिक प्रिय वस्तु हो ! उसने उसे खोल कर अजीब आँखों से देखा। फिर उसे चूमता होठों में ही बुदबुदाने लगा—"इन्कलाब जिन्दाबाद ! इन्कलाब जिन्दाबाद !"

धीरे धीरे उसकी आवाज ऊँची और ऊँची होती गई। वह निर्भाव आँखों से सामने क्षितिज की ओर देखता, कहता जा रहा था—"इन्कलाब "

लोग आश्चर्य मिश्रित दुख से उसकी ओर अपलक देख रहे थे। देखते-देखते बूढ़े की आवाज चीख में बदल गई। वह अब चीख-चीख कर, ठुमक ठुमक कर, कहता जा रहा था—"इन्कलाब "

लोगो ने उसे शान्त करने का सब प्रयत्न किया, पर बूढा चुप न हुआ। बस चीखता जाता था—"इन्कलाब "

(२)

लोगो का कहना है, कि तभी से बूढा पागल हो गया। तभी से उसका यह खेल शुरू है, उसका नाटक चल रहा है। पिता मरते वक्त बेटे को कुछ सन्देश दे जाता है। यहाँ जैसे बेटा ही मरते वक्त पिता का एक सन्देश दे गया। वह सन्देश है, इन्कलाब जिन्दाबाद।' यह सन्देश, यह मन्त्र ही जैसे बूढे का जीवन हो गया है। यह सन्देश हा जैसे चौबीस घडी उनके कानो मे गूँजा करता है। और शायद वह चाहता है, कि उसके उस मन्त्र से गाँव का, देश का कोना कोना गूज उठे। तभी तो वह सदा चिल्लाता रहता है, 'इन्कलाब '

दमन के तूफान मे सारा गाँव वीरान हो गया। सब अपने प्राण ले ले, कहीं न-कहीं छिप गये, भाग गये। उसकी बहू को भी लोगो ने उसके मैके पहुँचा दिया। पर लाख प्रयत्न करने पर भी, वह बूढा गाव से न हटा। उसकी आखों के सामने ही घर लूट लिये गये, जला दिये गये, सब-कुछ नष्ट कर दिया गया। पर वह अपना नारा श्मशान मे कापालिक की तरह घूम घूम कर लगाता रहा। वहा लोग नहीं रहे, तो क्या? गिरी-पडी, जली अधजली मिट्टी की दीवारे तो हैं, उसके गांव की, भारत माता की मिट्टी तो है। उन्ही के कण-कण मे जैसे गुँजा देना चाहता हो वह उन नारों को?

लोगों को आश्चर्य है, कि बूढा उस दमन-चक्र से कैसे बच गया। शायद उसे पागल समझ कर ही सैनिको ने उसे अपनी गोली का निशाना न बनाया हो, वरना कौन नारे लगाने वाला उनकी गोली से बच पाता, जब कि कोई गाँधी टोपी पहननेवाला

खद्दर पहनने वाला न बचा ?

खून, गम, आँसू, आग और विनाश की कितनी ही हृदय दहला देने वाली कहानियाँ भारत माता की छाती पर संगीनों की नोकों से लिख, अमिट दाग छोड़ दमन समाप्त हुआ। देश की राजनीतिक स्थिति में शीघ्रता से परिवर्तन पर-परिवर्तन होने लगे। पर उस बूढ़े और विधवा में कोई परिवर्तन न दाखा। जैसे अब उनके लिये एक ही राह निश्चित हो गई हो! जैसे संसार के परिवर्तन से उन्हें कोई मतलब ही न हो। विधवा यन्त्र की तरह, निर्जीव, चलती फिरती करुणा की मूर्ति की तरह सब काम, पहिले ही जैसा किये जा रही है। बूढ़े का खेल पहिले ही जैसा चल रहा है। हाँ, अब वह आस-पास के गाँवों में भी जाने लगा है। वहाँ भी वही खेल, वही नाटक। उसके पीछे लड़कों का वही झुण्ड, वही आसमान को कँपा देने वाले नारे!

लोग उन्हें देख कर सोचते हैं, क्या ये इसी तरह अपना जीवन बिता देंगे? क्या इनका दिमाग अब कभी भी ठीक न होगा। वीरान हुआ गाँव फिर बस गया। जले हुए घर फिर बन गये। लुटी हुई वस्तुयें फिर आ गईं। देश के प्रान्तों में फिर कांग्रेस की सरकारें कायम हो गईं। सब-कुछ फिर पहले ही जैसा हो गया। पर यह बूढ़ा, यह विधवा? ओह!

दिन बीतते गये। आखिर एक दिन वह भी आया, जब देश की जंजीरें टूट गयीं। देश की आजादी की तिथि निश्चित हो गई। जुल्मों और गुलामी के अपमानों की ज्वाला में जलते राष्ट्र में पुनर्जीवन आ गया। जनता का सिर उठ गया। पेशानी चमक उठी। आँखों से हर्ष की किरणें फूटने लगीं। होठों पर स्वतन्त्रता मुस्करा उठी। साँसों में मुक्ति की सुगन्धि भर गई। छाती खुशी से फूल उठी। प्राण-प्राण पुलक उठे। भारत की सदियों से कुचली भूमि अपनी चोटों को भुला लहलहा उठी।

आसमान सदियों में छाये उदासी के बादलों का काला परि-धान हटा, सुनील आभा की वर्षा करने लगा। रुँधा वायुमडल मुक्त हो झूम-झूम उठा।

लोगों ने यह समाचार जब बूढे और विधवा का सुनाया, तो सहसा उनकी भावहीन आँखो मे कोई भाव चमक उठा। बूढा पहिली बार इतने दिनों के बाद अपने मुँह से एक दूसरा शब्द बोल पड़ा—"सच ?"

"हाँ हाँ, बाबा, तुम्हारे बेटे और उसके-जैसे हजारों शहीदों की कुरबानी आज सफल हुई! उनके अरमान आज बर आये! उनकी साधे आज पूरी हुई! स्वर्ग में उनके लिये आज सबसे अधिक खुशी का दिन होगा! तुम भी खुश होओ, बाबा! तुम भी खुश होओ, नहू! यह हमारी खुशी का अवसर है!"

सूखा फूल हँस सकता, मुरझाई कली मुस्करा सकती, तो उन्हें देख कर कदाचित बूढ़े की हँसी और विधवा की मुस्कान का अन्दाजा कुछ लगाया जा सकता। यह परिवर्तन बूढे और विधवा मे! लोगों को आशा बँधी। अब इसका दिमाग जरूर ठीक हो जायगा!

पन्द्रह अगस्त! आजादी का दिन! खुशी का दिन!

आज की सुबह, आज के सूरज, आज की हवा मे कुछ और ही बात है। ऐसी मुक्त मुस्कान लुटाता हुआ सूरज कब निकला था? ऊषा के मुखडे पर इतना निखरा हुआ रंग कब दिखाई दिया था? आकाश का यह सुहावना रूप कब दृष्टिगोचर हुआ था? हवा इतनी खुशगवार कब मालूम हुई थी? और बूढ़े-बूढियो, युवक युवतियो, लडके लडकियों, बच्चे-बच्चियों के चेहरों पर खुशी की यह चमक, आँखों मे खुशी की

यह मुस्कान, होंठो पर खुशी की यह स्निग्ध फड़कन, सीनों में खुशी की यह धड़कन, रोम-रोम मे खुशी की यह पुलकन ! खुशी, आज चारों ओर खुशी ही खुशी दिखाई देती है। आकाश खुशियों की वर्षा कर रहा है। जमीन कण-कण से खुशियाँ बिखेर रही है। खुशी, खुशी ! आज देश में खुशी, देश के नगर-नगर, गाँव-गाँव मे खुशी, नगरो की सड़क-सड़क पर खुशी, गाँवो की गली-गली में खुशी, सड़कों के घर-घर मे खुशी, गलियों की झोपड़ी-झोपड़ी में खुशी, घरों के जन-जन में खुशी, झोपड़ियों के प्राण-प्राण मे खुशी ! खुशी, खुशी ! आज खुशी का दिन है ! आजादी का दिन है !

गाँव का हर घर, हर झोपड़ी रंग-बिरंगे कागजों की झंडियो से सजी है। खपरैलों की 'ओरियानियों' से पल्लवों के बन्दनवार और तोरण लटक रहे है। द्वारो पर केले के पेड़ और कलश रखे हुए हैं। मुँडेरों पर तिरंगे लहरा रहे हैं।

इस स्वर्ण अवसर पर आजादी के त्यौहार की खुशी मे गाँव वालो ने 'रनवीर-स्मारक' की स्थापना करने का निश्चय किया है। देश के एक प्रिय नेता भोले-भाले गाँव-वासियों की प्रार्थना स्वीकार कर, 'शहीद' को श्रद्धांजलि अर्पित करने तथा उसके स्मारक की स्थापना करने के लिये पधारे हैं। गाँव के लोग उत्साह, उमंग, खुशी में पागल से हो उठे हैं। जलूस गाँव की गली-गली मे चक्कर लगा, मन्दिर के बगल वाले मैदान मे जायगा। वहीं स्मारक की स्थापना होगी।

"बहू, बहू ! जल्द कपड़े बदल ले ! सारा गाँव जा रहा है ! हम भी चलेंगे ! आज खुशी का दिन, आजादी का दिन है, बहू ! इसी दिन के लिये तो रनवीर ने अपनी कुरबानी दी थी ! आज वह स्वर्ग से खुशी का यह त्यौहार, आजादी का यह त्यौहार

देखने आकाश-मार्ग से आयेगा ! नेता उसके गले में हार पहनायेगा, गाँव का हर आदमी उसके गले में हार पहनायेगा ! हारों से लदा हुआ उसका मुस्कराता हुआ चेहरा बहू, जल्दी करो, बहू ! मैं भी दो हार लाया हूँ, एक तुम्हारे लिये, एक अपने लिये ! हम भी उसे हार पहनायेंगे और और " कह कर, आँखों में खुशी के आँसू लिये, बूढा एक ओर हट गया।

आज बूढ़े की खुशी की सीमा नहीं। विधवा की खुशी की सीमा नहीं। जलूस के आगे-आगे वे खुशी के नशे में झूमते हुए चल रहे हैं। हर्ष-विह्वल आँखों में अपार ज्योति तरंगित हो रही है। असीम आनन्द की अनुभूति में हृदय की गति जैसे आप ही रुक-रुक जाती है। खुशी की मदहोशी में पैर ठिकाने नहीं पड रहे हैं। देश-प्रेम भरे गीत गाती अपार जनता उनके पीछे राष्ट्रीयता की उमंग में दीवानी हुई, चल रही है। जलूस ज्यों ज्यों आगे बढता है, भीड़ बढती जाती है। जो भी आता है, बूढे और विधवा के गले में हार पहना, उनके चरण-रज ले, माथे से लगा लेता है। पूज्यनीय शहीद के पिता, उसकी पत्नी भी पूज्यनीय है, देवता और देवी तुल्य हैं ! बूढे और विधवा की हर्ष-विह्वल आँखें रह-रह कर आकाश की ओर उठ जाती हैं। आकाश मार्ग से ही तो आयेगा उनका प्राणों से प्यारा रनवीर, यह आजादी का, खुशी का त्यौहार देखने !

मैदान में पहुँच, जलूस सभा में बदल गया। मंडल के सभापति ने बूढे और विधवा का परिचय नेता से कराया—"यह अमर शहीद रनवीर के पिता हैं, और यह उनकी सती पत्नी !"

मञ्च से उतर कर, नेता ने बूढ़े और विधवा के गले में हार पहिना, उनके पैर छुए। पूज्यनीय शहीद के पिता, उसकी पत्नी

भी पूज्यनीय हैं, देवता और देवी तुल्य हैं! यह मान, यह आदर, यह प्रतिष्ठा, यह पूजा, और अकिंचन बूढ़ा और विधवा! इतनी खुशी, इतना हर्ष, इतना आनन्द, और उनके पाँच बर्षों की पीड़ा, शोक और व्यथा से जर्जर शरीर, जर्जर हृदय! कैसे सँभाल सकेंगे वे इतना सब? पर उन्हें होश ही कहाँ था इस सबका? उनके बावले प्राणों का उल्लास तो अब जैसे असीमता को भी लँघ रहा था, आत्मा का अनन्त आनन्द अब आत्मा को ही डुबोये दे रहा था। उनके दर्शन-आकुल नेत्र तो टिके थे आकाश मार्ग पर, जिससे होकर आयेगा उनका प्राणों से प्यारा रनवीर, मुस्कराता हुआ, हँसता हुआ!

नेता ने आदर से उन्हें मंच पर अपनी बगल में बैठा लिया। सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। बंदेमातरम' गान के बाद सभापति ने अपना प्रारम्भिक भाषण दिया। फिर नेता का भाषण शुरू हुआ।

थोड़े में उन्होंने कांग्रेस और देश के स्वतन्त्रता-सग्राम का सिंहावलोकन किया। फिर बताया, कि देश ने यह दिन, आजादी का यह दिन, देखने के लिये कैसी कैसी कुरबानियाँ की हैं। बोलते-बोलते उन्होंने कहा—"आजादी की रूठी हुई देवी को प्रसन्न करने के लिए देश के हजारों वीरों और वीरांगनाओं ने अपने सिर के फूल चढ़ा दिये, अपने शरीर के खून की धाराओं से उसकी अर्चना की, अपने प्राणों का भोग लगा दिया! तब जाकर उसके अधरों पर प्रसन्नता की मुस्कान दिखाई दी! आप लोगों को गर्व होना चाहिये, कि उस देवी के चरणों में चढ़ाये गये हजारों सिरों के फूलों में एक फूल इस गाँव का भी था! आप लोगों को गर्व होना चाहिये, कि उस देवी की अर्चना में जो खून की नदियाँ बहा दी गई, उसमें कुछ बूँदें इस

गाँव की भी थी ! आप लोगों को गर्व होना चाहिये, कि उस देवी के भोग मे जितने प्राण लगाये गये, उनमे एक प्राण इस गाँव का भी था ! हमे यह बताने की आवश्यकता नहीं, कि गाँव को गर्व का यह वरदान देनेवाला इस गाँव का, हमारे देश का लाडला सपूत रनवीर था ! "

"रनवीर जिन्दाबाद ! अमर शहीद जिन्दाबाद !" गर्व में फूली जनता ने नारा लगाया। गर्व से उनकी उन्नत हुई पेशानियाँ चमक रही थी, उठी हुई आँखों से खुशी टपक रही थी, फूली छातियो मे जोश हलकोरे ले रहा था।

नेता ने मुड़ कर, एक बार बूढ़े और विधवा की ओर देखा। आकाश की ओर उठी हुई उनकी खुशी मे गोते लगाती आँखों को प्रतीक्षा-बद्ध देख, नेता ने फिर कहना शुरू किया—"हमे बेहद खुशी है, कि आज आप लोगो ने यह आजादी का दिन, आजादी का यह त्यौहार उस अमर शहीद का स्मारक स्थापित कर उसके पवित्र चरणो मे श्रद्धाजलियाँ अर्पित कर, मनाने का निश्चय किया है ! हमारा और हमारे देश का यह सब से बडा कर्त्तव्य है, कि हम अपने अमर शहीदो के प्रति श्रद्धाजलियाँ अर्पित करें ! आज हमारे स्वर्गवासी अमर शहीदों के हर्ष की सीमा न होगी। आज अपने प्यारे देश की आजादी का यह त्यौहार, खुशी का यह त्यौहार स्वर्ग से उतर कर वे आकाश से देख रहे होंगे। उनके दर्शन, काश, हम कर सकते ! उनकी खुशी से चमकती हुई आँखें, काश, हम देख सकते ! उनके पवित्र चरण, काश, हम इन हाथो से छू सकते। असम्भव नहीं कि आज इस शुभ अवसर पर इस गाँव का लाडला शहीद रनवीर भी अपने प्यारे गाँव के आकाश पर आ " भरे गले से कह कर, नेता ने अपनी श्रद्धा के आँसुओ से भरी आँखों को आकाश की ओर उठा दिया।

रनवीर की पुनीत स्मृति मे उनकी नम आँखे आकाश की ओर उठ गयी। चारों ओर पवित्रता और गम्भीरता में लिपटी हुई विचित्र शान्ती छा गई। सहसा अनियन्त्रित-सा उठ कर, आँखें आकाश पर टिकाये, बूढा हर्ष विह्वल हो चीख पड़ा—"बहू, बहू, ! देख, बहू ! वह आ रहा है हमारा रनवीर ! हमारा ..."

खुशी की एक च ख चीखती हुइ ही बहू ने उठ कर, ससुर के कन्धे पर अनजाने ही हाथ रख कर, आकाश की ओर ही टिकटिकी बांध, बोली—"हाँ बाबू जी, हाँ ! वह ... वह ..."

नेता और जनता की तन्मयता उनकी चीख सुन टूट गई। उन्होने बूढे और विधवा के खड़े काँपते हुए शरीर को देखा। उनकी सीमा से भी अधिक फैली हुई, खुशी से सूर्य की तरह चमकती हुई आँखें ! अपार हर्ष की वे चीखें ! ओह, क्या हो गया है इन्हें ?

कुछ लोग उन्हें सँभालने के लिये उनकी ओर लपके, कि बूढा और विधवा चीख पडे—"आओ, आओ !" और जैसे किसी के गले मे हार पहनाने के लिये वे अपने हार लटकाये हाथों को हवा मे बढा रहे हो। शरीर झुके, झुकते गये, और दूसरे क्षण मच से धड़ाम धड़ाम गिर पडे।

"ओह ! ओह !" की कितनी ही उनकी ओर दौड़ती बिकल आवाजे !

नेता ने सिर उठा कर भरे गले से कहा—"इनके हृदय की गति बन्द हो गई है।"

मन्दिर के बगल वाले मैदान में एक पत्थर का स्मारक खड़ा है। उसके चबूतरे के बीच की पटिया पर खुदा है, 'ग्यारह अगस्त, सन् १९४२ को थाने की छत पर राष्ट्रीय तिरगा अवरोहण करते समय थानेदार की गोली से शहीद हुए

"रनवीर" और पन्द्रह अगस्त, सन् १६४७ को देश की आजादी के त्यौहार के दिन, अपने प्यारे शहीद पुत्र और अपने प्यारे शहीद पति पर प्राणो की श्रद्धाजलि अर्पित करने वाले उसके वृद्ध पिता और विधवा पत्नी की पुण्य स्मृति मे यह स्मारक गॉव-वासियो ने खड़ा किया !,

मन्दिर मे पूजा करने वाले इस स्मारक पर फूल चढ़ाना कभी नहीं भूलते !